

THE WORKS

OF

Sri Sant Aracharya

SRI

VANI VIHAS

EDITION



THE WORKS OF  
**SRI SANKARACHARYA**



VOLUME

**14**

SRI VANI VILAS PRESS

— SRIRANGAM —

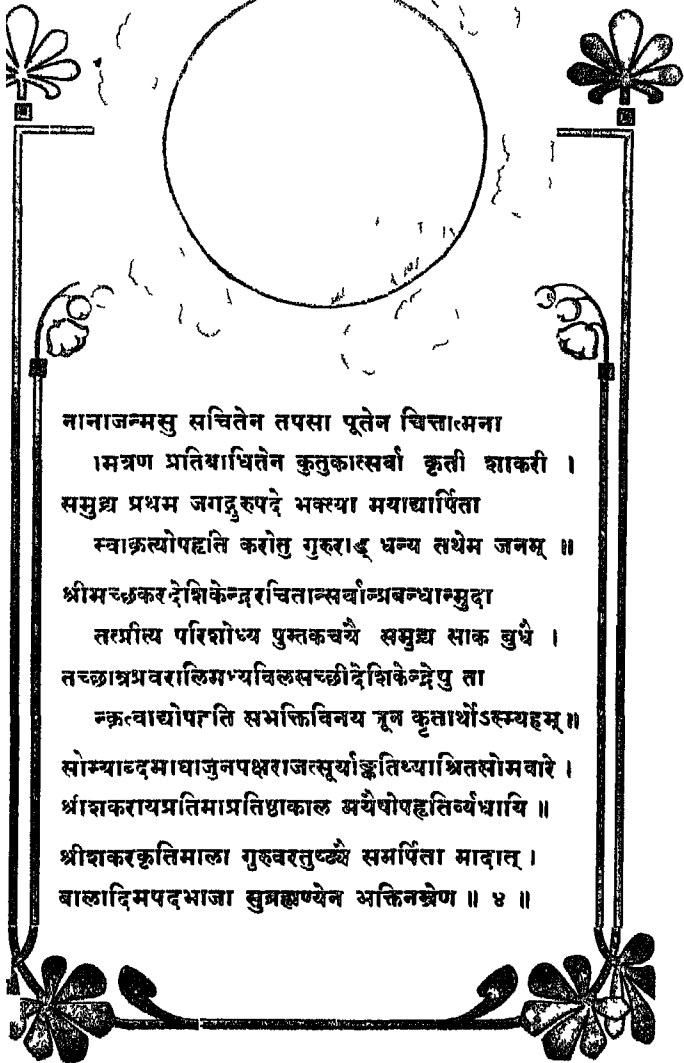
परिग्रहण सं० 10.376  
ग्रन्थालय, के. ए. वि. शि. संस्थान  
सारनाथ, वाराणसी



10

HIS HOLINESS SRI JAGADGURU  
**SRI SACHCHIDANANDA SIVABHINAVA**  
**NRISIMHA BHARATI SWAMI**

WHO ADORNS THE THRONO OF THE SRINGERI MULLI  
AS THE WORTHY REPRESENTATIVE OF THE  
GREAT SANKARACHARYA  
AND  
THAN WHOM IT IS IMPOSSIBLE  
TO COME ACROSS A HOLIER PERSONAGE  
A TRULY MAHATMA A NOBLES SAINT  
AND A MORE RIGOROUS ASCETIC  
THIS EDITION IS MOST RESPECTFULLY INSCRIBED  
AS A TOKEN OF UNBOUNDED ADMIRATION  
BY THE HUMBLERS OF ALL HIS DISCIPLES  
T K BALASUBRAHMANYAM



नानाजन्मसु सचितेन तपसा पूतेन चित्तात्मना  
।मत्रण प्रतिधाधितेन कुतुकात्सर्वा कृती शाकरी ।  
समुद्य प्रथम जगद्रूपदे भक्त्या मयाद्यार्पिता  
स्वाकृत्योपहृति करोतु गुरुराद् धन्य तथेम जनम् ॥  
श्रीमच्छकरदेशिकेन्द्ररचितान्सर्वाङ्गप्रबन्धाभ्युदा  
तरप्रीत्य परिशोध्य पुस्तकचयै समुद्य साक बुधै ।  
तच्छात्रप्रवरालिमभ्यविलसच्छीदेशिकेन्द्रेषु ता  
न्क्रत्वाद्योपति सभक्तिविनय नून कृतार्थोऽस्म्यहम् ॥  
सोम्याब्दमाघाजुनपक्षराजत्सूर्याङ्कतिथ्याश्रितसोमवारे ।  
श्रीशकरायप्रतिमाप्रतिष्ठाकाल अयैषोपहृतिर्व्यधायि ॥  
श्रीशकरकृतिमाला गुरुवरतुष्ट्यै समर्पिता मादात् ।  
बालादिमपदभाजा सुब्रह्मण्येन भक्तिनम्रेण ॥ ४ ॥



|                  | PAGE |
|------------------|------|
| VIVEKACHUDAMANI  | 1    |
| UI ADI'SASIHASRI |      |
| Gadya Prabandha  | 113  |
| Padya Prabandha  | 151  |





विवेकचूडामणिः

१

उपदेशसहस्री

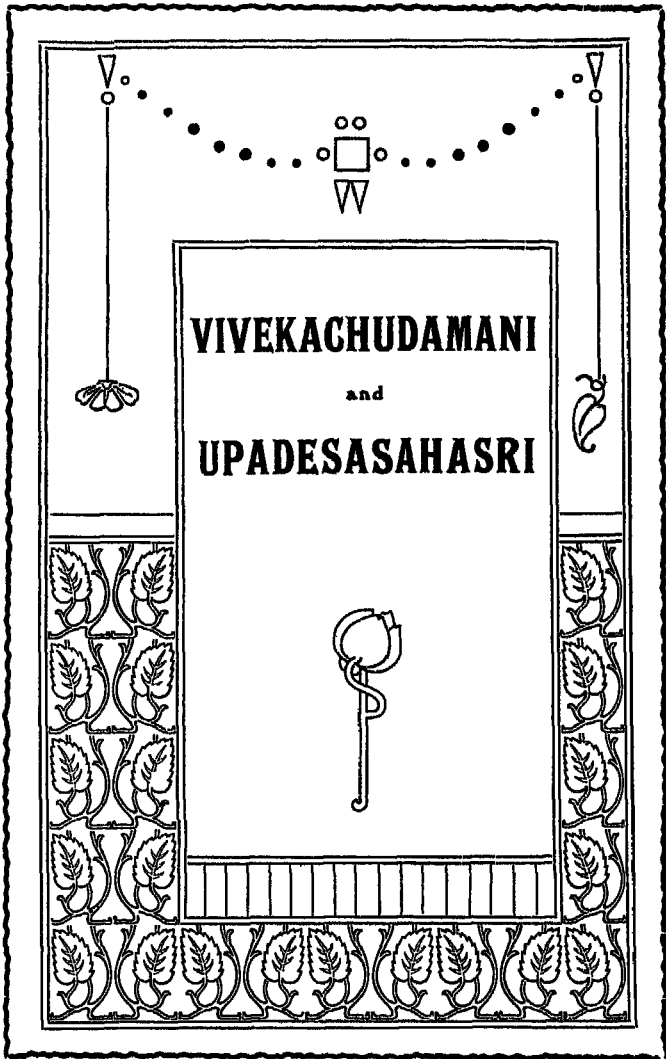
गद्यप्रबन्ध

११३

पद्यप्रबन्ध

१५१





**VIVEKACHUDAMANI**

and

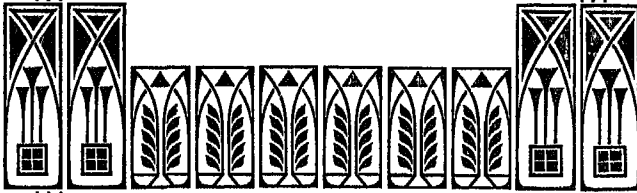
**UPADESASAHASRI**





॥ श्रीः ॥

विवेकचूडामणिः  
उपदेशसहस्री च



॥ श्री ॥

# ॥ विषयानुक्रमणिका ॥

—❁—

प्रथम

विवेकचूडामणिः

१—१११

|                       |    |
|-----------------------|----|
| गुरुनमस्कार           | ३  |
| नरजन्मप्रशंसा         | ३  |
| आत्मबोध एव मुक्तिहेतु | ४  |
| मुक्त्यर्थो यत्नविशेष | ४  |
| वस्तुविचार कर्तव्य    | ५  |
| आत्मविद्याधिकारी      | ५  |
| साधनचतुष्टयसंपत्ति    | ५  |
| गुरूपसत्ति            | ७  |
| मार्गोपदेश            | १० |
| मोक्षहेतव             | १४ |
| आत्मानात्मविवेचनम्    | १४ |
| स्थूलशरीरम्           | १४ |
| सूक्ष्मशरीरम्         | १८ |
| कारणशरीरम्            | २१ |

|                        |     |
|------------------------|-----|
| परमात्मा               | २५  |
| बन्ध                   | २७  |
| बन्धमोक्षोपाय          | ३०  |
| अन्नमयकोशविवेक         | ३१  |
| प्राणमयकोशविवेक        | ३५  |
| मनोमयकोशविवेक          | ३६  |
| विज्ञानमयकोशविवेक      | ३६  |
| अनाद्यविद्यानाशोपपत्ति | ४०  |
| आनन्दमयकोशविवेक        | ४२  |
| साक्षिस्वरूपम्         | ४२  |
| ब्रह्मणोऽद्वितीयत्वम्  | ४१  |
| ब्रह्मस्वरूपम्         | ४१  |
| तत्त्वमसिमहावाक्यार्थ  | ४९  |
| वासनाक्षयोपाय          | ५०  |
| प्रमादत्याग            | ६१  |
| समाधि                  | ६९  |
| जिवन्मुक्तलक्षणम्      | ७४  |
| ज्ञानात्कर्मविलय       | ७७  |
| ब्रह्मणि नानात्वनिषेध  | ९१  |
| आत्मयोग कर्तव्य        | ९२  |
| शिष्यस्य स्वानुभवकथनम् | ९६  |
| गुरोरनुशासनम्          | १०१ |

|                   |     |
|-------------------|-----|
| ब्रह्माण्ड समाचार | १०४ |
| शरीरपात           | १०७ |
| ब्रह्मभावापत्ति   | १०८ |

## उपदेशसहस्री ( गद्यप्रबन्धः ) ११३—१५०

### १ शिष्यानुशासनप्रकरणम् ११५—१२९

|  |     |
|--|-----|
| चिकीर्षितप्रतिज्ञापूर्वक <sup>१</sup> शास्त्रीयानुबन्धसंग्रह | ११५ |
| संग्रहेणोक्तस्याथस्य विवरणम्                                 | ११५ |
| गुरुपसत्तेरुद्देश्यकायत्वोक्ति                               | ११५ |
| पुन पुनर्गुरुपदेशे हेतूपन्यास                                | ११६ |
| ज्ञानादयहेतुजातोपदेश   | ११६ |
| गुरुकर्तृकोपदेशक्रम  | ११६ |
| श्रुतिभि स्मृतिभिश्च ब्रह्मणो लक्षण ग्राहयेदित्युक्ति        | ११७ |
| उपदेशानन्तर मतिनैश्चल्याय गिध्य पुन पृच्छेदि                 |     |
| त्याचार्यकृत्यम्   | ११७ |
| अप्रतिपत्त्यादिदोषाच्छिष्यस्योत्तरम्                         | ११७ |
| पुनरुपदेशेन तादृज दोष निवारयत्याचार्य                        | ११८ |
| स्थूलदेहाभिमानत्यागान तर शिष्यस्योक्ति                       | ११८ |
| शिष्यप्रज्ञसापूर्वकमाचार्यस्योत्तरम्                         | ११९ |
| उक्तार्थवैशद्याय शिष्यप्रश्नोत्थापनम्                        | ११  |
| उत्तरदानार्था पुरो प्रवृत्ति                                 | ११० |

|  |     |
|--|-----|
| शरीरस्य भिन्नजात्यवयवसंस्कारत्वज्ञापनाद्योपपत्तिप्रकार               | ११९ |
| शरीरोत्पत्त्युपदेश   | १२० |
| सूक्ष्मशरीराभिमानत्याजनम्  | १२१ |
| परमात्मैव क्षेत्रज्ञ इत्यत्र स्मृतय                                  | १२२ |
| पगजीवयोरभेदेऽनुभवविरोध इति शङ्कानिगस<br>पूर्विकाभेददृष्टिनिदा        | १२२ |
| अभेददृष्टिप्रशसापूर्वक ससाधनस्य क्रमेण प्रतिषे-<br>धोपपादनम्         | १२३ |
| उक्तस्यैव ब्रह्मात्मैक्यस्य युक्त्या व्यग्रस्थापनम्                  | १२४ |
| वदनादीनामनात्मधमेत्वापपादनम्   | १२६ |
| ब्रह्मात्मैकत्वे लौकिकवैदिकव्यवहारविराधशङ्का<br>अन्तान्चार्यसमाधानम् | १२७ |
| कर्मकाण्डाप्रामाण्यशङ्का तत्परिहारश्च                                | १२८ |
| अविच्छेन्मूलनफलम्  | १२९ |
| मुमुक्षोत्पत्तिकालीनससाधनक्रमत्यागनिगमनम्                            | १२९ |

## २ कूटस्थाद्वयात्मबोधप्रकरणम् १३०—१४७

|  |     |
|--|-----|
| ऋतसन्ध्यासस्य मुमुक्षोर्विधित श्रवणकर्तव्यत्वसूचना |     |
| पुर सर ससारविषयकशिष्यप्रश्नावतारणम्                | १३० |
| शिष्याश्वासनपूर्वक गुरोरुत्तरदानम्                 | १३० |
| पुनर्विशेषबुभुत्सया विनेयप्रश्नोऽविद्याविषयक       | १३१ |
| गुरोरुत्तरम्                                       | १३१ |

|   |     |
|---|-----|
| अध्यासानुपपत्तिप्रदर्शनपूर्वक शिष्यप्रश्न         | १३१ |
| गुरोरुत्तरम्                                      | १३१ |
| अध्यस्तत्पदात्मन शिष्याशङ्किता तत्सत्त्वानुपपत्ति | १३२ |
| अत्रोत्तरम्                                       | १३२ |
| त्रैनाशिकपक्षप्रातिदोषाशङ्कातत्परिहारौ            | १३२ |
| परमते दूषणापादनम्                                 | १३४ |
| प्रकारान्तरेणाध्यासानुपपत्तिशङ्का तन्निरासश्च     | १३४ |
| कूटस्थविषयकसशयतत्परिहारौ                          | १३७ |
| उपलब्धत्वेन कूटस्थत्वानुपपत्तिशङ्कातत्परिहारौ     | १३८ |
| अवस्थात्रयसाक्षितया कूटस्थत्वानुपपत्तिशङ्का       |     |
| तत्परिहारश्च                                      | १३९ |
| मविन्नित्यत्वाक्षेपतत्परिहारौ                     | १४१ |
| प्रमातृत्वानुपपत्तिशङ्कातत्परिहारौ                | १४२ |
| कर्तृत्वाक्षेपतत्परिहारौ                          | १४४ |
| अवगते कूटस्थत्वफलत्रयोर्विरोधशङ्कातत्परिहारौ      | १४५ |
| द्वैतस्य मृषात्वप्रकटनम्                          | १४६ |

### ३. परिसख्यानप्रकरणम् ।

१४७—१५०

|   |     |
|---|-----|
| सोपस्कारपरिसख्यानप्रकारोपदेश              | १४७ |
| आत्मन शब्दादिभिरनभिभवत्वानुचिन्तनम्       | १४८ |
| शब्दाद्यनुभवानुचिन्तनमात्मनोऽविकारित्वानु |     |
| चिन्तन च                                  | १४९ |

|   |         |
|---|---------|
| उपदेशसहस्री (पद्यप्रबन्धः)                            | १५१—२४६ |
| १ उपोद्धातप्रकरणम्                                    | १५३—१५६ |
| मङ्गलाचारपूर्वकं ब्रह्मविद्यारम्भसमर्थनम्             | १'      |
| ज्ञानम्यैत्र मोक्षहेतुत्वोक्ति                        | १७४     |
| ज्ञानकर्मसमुच्चयवादस्तान्निर्वासश्च                   | १५४     |
| कर्मकाण्डाप्रामाण्यशङ्कातत्परिहारौ                    | १५५     |
| अविद्याया पुनरनुद्भव                                  | १५१     |
| विद्याया सहकारिनिरपेक्षत्वेनैत्र मोक्षहेतुत्वकथनम्    | १५६     |
| उपनिषच्छब्दार्थनिर्वचनम्                              | १५८     |
| २. आत्मज्ञानोत्पत्तिप्रकरणम्                          | १५६—१५७ |
| ब्रह्मात्मज्ञानस्य वाक्यादनुत्पत्तिशङ्कापरिहार        | १' ८    |
| उत्पन्नस्य ज्ञानस्य प्रत्यक्षादिबान्ध्यत्वशङ्कापरिहार | १' ७    |
| ३ ईश्वरात्मप्रकरणम्                                   | १५७     |
| जीवब्रह्मणोरभेदनिरूपणम्                               | १७७     |
| अभेदाभावे श्रुत्यनुपपत्तिप्रदर्शनम्                   | १' ७    |
| ४ तत्त्वज्ञानस्वभावप्रकरणम्                           | १५८     |
| आत्मनो ज्ञान न मोक्षसाधनम्, सच्चित्तानेककर्म          |         |
| प्रतिबन्धादिति शङ्का तत्रोत्तर च                      | १५८     |
| ५ बुद्ध्यपराधप्रकरणम्                                 | १५८—१५९ |
| सर्वस्य जतोरात्मज्ञानाग्रहे उदङ्कन्याख्यायिका         | १७८     |

|  |                |
|--|----------------|
| ससारविभ्रमकारण तत्प्रमाण च                                       | १५९            |
| पदार्थविवेकवता भाव्य मुमुक्षुणेति कथनम्                          | १६०            |
| <b>६ विशेषापोहप्रकरणम्</b>                                       | <b>१५९—१६०</b> |
| स्थूलोपायेन पदार्थशोधनप्रकारोपदेश                                | १५९            |
| विशेषणानामनात्मत्वप्रदर्शनम्                                     | १५९            |
| आत्मनोऽन्यनिरपेक्षा स्वत सिद्धि                                  | १६             |
| <b>७. बुद्ध्यारूढप्रकरणम्</b>                                    | <b>१६०—१६१</b> |
| बुद्ध्यारूढस्यार्थस्य स्यानुभवावष्टम्भेन स्पष्टीकरणम्            | १६०            |
| आत्मनो विकारित्वादिदोषाभावोपपादनम्                               | १६             |
| आत्मन शुद्धत्वाद्वितीयत्वयोर्वर्णनम्                             | १६१            |
| <b>८. मतिविलापनप्रकरणम्</b>                                      | <b>१६१—१६२</b> |
| बुद्ध्यात्मनो सवादरूपेण बुद्धे प्रथमोपदेश                        | १६१            |
| एतत्प्रकरणनिर्माणे निमित्तकथनम्                                  | १६२            |
| <b>९ सूक्ष्मताव्यापिताप्रकरणम्</b>                               | <b>१६२—१६३</b> |
| आत्मनो निरतिशय सूक्ष्मत्व व्यापित्व च                            | १६२            |
| ब्रह्मादीनामात्मान प्रति शरीरत्वम्                               | १६३            |
| स्वरूपज्ञानस्य निर्विषयत्व नित्यत्व च                            | १६३            |
| <b>१०. दृशिस्वरूपपरमार्थदर्शनप्रकरणम्</b>                        | <b>१६४—१६७</b> |
| आत्मनो निर्विषयज्ञानस्वभावत्वस्य स्वानुभूत्याभि<br>नयेन प्रकटनम् | १६४            |



|   |     |
|---|-----|
| जमजरादिविक्रियाराहित्यन कूटस्थाद्वयस्वाभा |     |
| व्यस्य श्रुतिप्रदर्शनपूर्वकमुपपादनम्      | १६४ |
| आत्मतत्त्वपरिज्ञानस्य कैवल्यफलकत्वकथनम्   | १६६ |
| आत्मवित्स्वरूपनिरूपणम्                    | १   |

### ११. ईक्षित्वप्रकरणम् १६७—१६९

|  |     |
|--|-----|
| कर्मण , कर्मसहितज्ञानस्य या मोक्षहेतुत्वाङ्गानिरास | १६७ |
| द्वैताभावे प्रत्यम्नादिविरोधनिरसनम्                | १६७ |
| कर्मणो मोक्षहेतुतायामनुपपत्ति                      | १६९ |

### १२. प्रकाशप्रकरणम् - १६९—१७१

|  |     |
|--|-----|
| साभासान्त करणाविवेकेनात्मनो याथात्म्याज्ञानम्        | १६९ |
| आत्मनो याथात्म्यज्ञानसिद्धये तत्त्वमिति श्रुत्युपदेश | १७० |
| चित्प्रकाशस्य नित्यत्वोपपादनपूर्वकमात्मनो नि         |     |
| याज्यत्वाभावप्रतिपादनम्                              | १७१ |

### १३ अचक्षुष्टप्रकरणम् १७२—१७५

|   |     |
|---|-----|
| आत्मन शुद्धत्वान्चलत्वादिव्यवस्थापनम्         | १७२ |
| ससारनिवृत्त्युपायकथनतो मुमुक्षुशिक्षणा        | १७३ |
| अविकारित्वाद्विक्षेप समाधिश्च न स्त इति कथनम् | १७३ |
| आत्मन पूर्णत्ववर्णनम्                         | १७४ |
| अह ब्रह्मास्मीति सदानुसदध्यादिति मुमुक्षुप्रो |     |
| त्साहनम्                                      | १७५ |

१४ स्वप्नस्मृतिप्रकरणम् १७५—१८२

|  |     |
|--|-----|
| अन्त करणस्यापरोक्षत्व तत्फल च                | १७५ |
| आत्मनि हेयाद्यभाव अनुभवेनाप्यवगम्यतेति कथनम् | १७६ |
| मोक्षाय स्मृति कर्तव्या                      | १७७ |
| ब्रह्मणोऽक्षरत्वम्                           | १७७ |
| आत्मविद सफल कर्मेति शङ्कावारणम्              | १७८ |
| आत्मज्ञस्य फलम्                              | १७८ |
| आत्मनोऽकार्यशेषत्वम्                         | १७९ |
| आत्मनो देहद्वयविविक्तत्वम्                   | १८० |

१५. नान्यदन्यत्प्रकरणम् १८३—१८९

|   |     |
|---|-----|
| स्वभावाशुद्ध आत्मा साधनविशेषेण शुद्धा<br>भवतीति केषाचिन्मतस्य निरास | १८३ |
| आत्मन साक्षित्वम्   | १८३ |
| विदुष क्रियात्याग मर्तव्यमात्मरूप च                                 | १८३ |
| ब्रह्म प्रतिपत्तु पदार्थविवेक कुर्यान्मुमुक्षुरिति कथनम्            | १८५ |
| जागराद्यवस्था तत्साक्षी आत्मा च                                     | १८५ |
| मुमुक्षो कर्तव्योपदेग   | १८७ |
| स्वयंप्रकाशत्व ज्ञेयत्वाभावश्च                                      | १८८ |

१६ पार्थिवप्रकरणम् १९०—१९९

|                             |     |
|-----------------------------|-----|
| स्थलशरीरात्मवादिमतनिराकरणम् | १९० |
|-----------------------------|-----|

|                                      |     |
|--------------------------------------|-----|
| इन्द्रियात्मवादिमतनिराकरणम्          | १९० |
| बुद्ध्यात्मवादिमतनिराकरणम्           | १९० |
| शूयात्मवादिमतनिराकरणम्               | १९१ |
| दिगम्बरमतनिराकरणम्                   | १९२ |
| शाक्यमतनिराकरणम्                     | १९२ |
| शून्यमतनिराकरणाय स्वमतसामञ्जस्यम्    | १९३ |
| प्रधानपुरुषयो सबन्धाभावप्रपञ्चम्     | १९५ |
| वैशेषिकमतप्रक्रियादूषणम्             | १९६ |
| बन्धस्याज्ञानात्मकत्वम्              | १९७ |
| मोक्षस्वरूपम्                        | १९७ |
| परपक्षनिराकरण सक्षिण्य स्वमतमुपसहरति | १९८ |

## १७. सम्यग्ज्ञातिप्रकरणम्

२००—२११

|                                    |     |
|------------------------------------|-----|
| गुरुदेवतानमस्कार                   | २   |
| आत्मलाभस्य परमत्वम्                | २०० |
| आत्मनो ब्रह्मणश्चैकत्वम्           | २०१ |
| चित्तस्य तपोभि शोधनम्              | २०४ |
| मायाकल्पितमात्मनो बहुत्वम्         | २०३ |
| बुद्धौ आत्मनो ग्रहण नित्यत्वादिक च | २०६ |
| कर्मणा त्याज्यत्वम्                | २०१ |
| गुरूपसत्ति                         | २०६ |
| पदार्थविवेक                        | २०  |

|   |                |
|---|----------------|
| प्रतिबुद्धस्य मुमुक्षोरनुसन्धानप्रकार                                   | २०७            |
| उक्तस्य प्रकरणार्थस्योपसंहार  | २१०            |
| <b>१८ तत्त्वमतिप्रकरणम्</b>   | <b>२११—२४०</b> |
| गुरुनमस्कारपूर्वक सप्रदायशुद्धयभिधानम्                                  | २११            |
| तत्त्वमस्यादि प्राक्यादे प्रापगभ्रजानमनर्थनिवृत्तिफलमुत्पद्यते          | २११            |
| प्रसख्यानवादिमततोत्थापना  | २१२            |
| स्वसिद्धा तत्प्रदर्शनम्   | २१३            |
| आत्मन प्रत्ययागोचरत्वम्   | २१४            |
| आत्मन शब्दागोचरत्वम्  | २१५            |
| एकदेशिमतानि दूषयितु सग्रहप्रकार   | २१५            |
| आभासरूपणपूर्वक चिच्छायावादिप्रभृतिमत<br>निराकरणम्                       | २१५            |
| आत्मनि जानात्यादिशब्दव्यवहारानुपपत्तिशङ्का<br>एतत्परिहार                | २१७            |
| बुद्धिविषये तार्किकसौगतादिमतनिरास                                       | २१९            |
| आभासविषये गङ्गापरिहारौ  | २२०            |
| युष्मदस्मद्विवेक  | २२२            |
| विज्ञातपदार्थतत्त्वे पुरुषे महावाक्य, फलवद्विज्ञान<br>जनयतीति 'गर्जनम्' | २२३            |
| प्रतिपत्तव्यार्थस्वभावानिरूपणम्   | २२४            |
| विज्ञानवादिबौद्धमतनिराकरणम्   | २२९            |

|   |     |
|---|-----|
| प्रत्ययाध्यक्षयोः संबन्ध                      | २३० |
| त्रिवेकाविवेकयोर्बाध्यबाधकभाष                 | २३१ |
| तत्त्वपदयोरेकार्थत्वे पर्यायत्वादिशङ्कापारहार | २३२ |
| चपदार्थविवेक                                  | २३३ |
| तत्त्वमसीत्यादिवाक्यार्थविचार                 | २३४ |
| प्रकारान्तरेण प्रसरयानप्राप्तिनिराम           | २३६ |
| प्रकरणार्थोपसहार                              | २३९ |

## १९ भेषजप्रयोगप्रकरणम्

२४०—२४६

|  |     |
|--|-----|
| मसारस्य मनोध्यासनिबन्धन उद्योतनायात्ममन सवाद | २४० |
| आत्मनोऽद्वितीयत्वम्                          | २४२ |
| आत्मनो विकल्पनाद्यविषयत्वम्                  | २४३ |
| वचरोऽद्वैतनिश्चयहतु                          | २४३ |
| उक्तार्थनिश्चयशून्यानामनर्थप्राप्त           | २४४ |
| नस्तुमालस्य कारणत्वकार्यत्वयोनिगस            | २४५ |
| द्वैताभासनिरूपण मङ्गल च                      | २४६ |





॥ श्री ॥

॥ विवेकचूडामणिः ॥

---

॥ श्रीः ॥

# ॥ विवेकचूडामणिः ॥

*Gourshunker Ganeriwala*

सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचर तमगोचरम् ।

गोविन्द परमानन्द मद्गुरु प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ १ ॥

जन्तूना नरजन्म दुर्लभमत पुस्त्व ततो विप्रता

तस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात्परम् ।

आत्मानात्मविवेचन स्वनुभवो ब्रह्मात्मना सस्थिति

मुक्तिर्नो शतकोटिजन्मसु कृतै पुण्यैर्विना लभ्यते ॥

दुर्लभ त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् ।

मनुष्यत्व मुमुक्षुत्व महापुरुषसञ्चय ॥ ३ ॥

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभ

तत्रापि पुस्त्व श्रुतिपारदर्शनम् ।

य स्वात्ममुक्त्यै न यतेत मूढधी

स आत्महा स्व विनिहन्त्यसद्गहात् ॥ ४ ॥

इत को न्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति ।  
दुर्लभ मानुष देह प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ॥ ५ ॥

पठन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवा  
ऋर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवता ।  
आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्ति  
र्न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥ ६ ॥

अमृतत्वस्य नाशास्ति वित्तेनेत्येव हि श्रुति ।  
ब्रवीति कर्मणो मुक्तेरहेतुत्व स्फुट यत ॥ ७ ॥

अतो विमुक्त्यै प्रयतेत विद्वा-  
न्सन्यस्तबाह्यार्थसुखस्पृह सन् ।  
सन्त महान्त समुपेत्य देशिक  
तेनोपदिष्टार्थसमाहितात्मा ॥ ८ ॥

उद्धरेदात्मनात्मान मग्न ससारवारिधौ ।  
योगारूढत्वमासाद्य सम्यग्दर्शननिष्ठया ॥ ९ ॥

सन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये ।  
यत्यता पण्डितैर्धीरैरात्माभ्यास उपस्थितै ॥ १० ॥



चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये ।  
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित्कर्मकोटिभि ॥ ११ ॥

सम्यग्विचारत सिद्धा रज्जुतत्त्वावधारणा ।  
भ्रान्त्योदितमहासर्पभवदु खविनाशनी ॥ १२ ॥

अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारेण हितोक्ति ।  
न ह्यानेन न दानेन प्राणायामशतेन वा ॥ १३ ॥

अधिकारिणमाशास्ते फलसिद्धिर्विशेषत ।  
उपाया देशकालाद्या सन्त्यस्मिन्सहकारिण ॥ १४ ॥

अतो विचार कर्तव्यो जिज्ञासोरात्मवस्तुन ।  
समासाद्य दयासिन्धु गुरु ब्रह्मविदुत्तमम् ॥ १५ ॥

मेधावी पुरुषो विद्वानूहापोहविचक्षण ।  
अधिकार्यात्मविद्यायामुक्तलक्षणलक्षित ॥ १६ ॥

विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिन ।  
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता मता ॥ १७ ॥

साधनान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभि ।  
येषु सत्स्वेव सान्निष्टा यदभावे न सिध्यति ॥ १८ ॥

आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेक परिगण्यते ।  
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम् ॥ १९ ॥

शमादिषट्कसपत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम् ।  
ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्येत्येवरूपो विनिश्चय ॥ २० ॥

सोऽथ नित्यानित्यवस्तुविवेक समुदाहृतः ।  
तद्वैराग्य जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभि ॥ २१ ॥

देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोग्यवस्तुनि ।  
विरज्य विषयव्राताद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहु ॥ २२ ॥

खलक्ष्ये नियतावस्था मनस शम उच्यते ।  
विषयेभ्य परावर्त्य स्थापन स्वस्वगोलके ॥ २३ ॥

उभयेषामिन्द्रियाणा स दम परिकीर्तित ।  
बाह्यानालम्बन वृत्तेरेषोपरतिरुत्तमा ॥ २४ ॥

सहन सर्वदु खानामप्रतीकारपूर्वकम् ।  
चिन्ताविलापरहित सा तितिक्षा निगद्यते ॥ २५ ॥

शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यावधारणा ।  
सा श्रद्धा कथिता सन्निर्यया वस्तूपलभ्यते ॥ २६ ॥

सम्यगास्थापन बुद्धे शुद्धे ब्रह्मणि सर्वदा ।  
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम् ॥ २७ ॥

अहकारादिदेहान्तान्बन्धानज्ञानकल्पितान् ।  
स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता ॥ २८ ॥

मन्दमध्यमरूपापि वैराग्येण शमादिना ।  
प्रसादेन गुरो सेय प्रवृद्धा सूयते फलम् ॥ २९ ॥

वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यत्नं तु विद्यते ।  
तस्मिन्नेवार्थवन्तं स्युः फलवन्तं शमादयः ॥ ३० ॥

एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्वमुमुक्षयो ।  
मरौ सलिलवत्तत्र शमादेर्भानमात्रता ॥ ३१ ॥

मोक्षकारणसामग्या भक्तिरेव गरीयसी ।  
स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥ ३२ ॥

स्वात्मतत्त्वानुसंधानं भक्तिरित्यपरे जगुः ।  
उक्तसाधनसंपन्नस्तत्त्वजिज्ञासुरात्मनः ॥ ३३ ॥

उपसीदेद्गुरुं प्राज्ञं यस्माद्बन्धविमोक्षणम् ।  
श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ३४ ॥

ब्रह्मण्युपरत शान्तो निरिन्धन इवानल ।  
अहेतुकदयासिन्धुर्बन्धुरानमता सताम् ॥ ३५ ॥

तमाराध्य गुरु भक्त्या प्रह्व प्रश्रयसेवनै ।  
प्रसन्न तमनुप्राप्य पृच्छेज्ज्ञातव्यमात्मन ॥ ३६ ॥

स्वामिन्नमस्ते नतलोकबन्धो  
कारुण्यसिन्धो पतित भवाब्धौ ।  
मामुद्धरात्मीयकटाक्षदृष्ट्या  
ऋज्वातिकारुण्यसुधाभिवृष्ट्या ॥ ३७ ॥

दुर्वारससारदवाग्निमत  
दोधूयमान दुरदृष्टवातै ।  
भीत प्रपन्न परिपाहि मृत्यो  
शरण्यमन्य यदह न जाने ॥ ३८ ॥

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो  
वसन्तवल्लोकहित चरन्त ।  
तीर्णा स्वय भीमभवार्णव जना  
नहेतुनान्यानपि तारयन्त ॥ ३९ ॥

अयं स्वभावः स्वतः एव यत्पर-  
 श्रमापनोदप्रवणं महात्मनाम् ।  
 सुधाशुरेषु स्वयमर्ककर्कश  
 प्रभाभितप्तमवति क्षितिं किल ॥ ४० ॥

ब्रह्मानन्दरसानुभूतिकलितैः पूतैः सुशीतैः सितै-  
 र्युष्मद्वाक्कलशोज्ज्वलितैः श्रुतिसुखैर्वाक्यामृतैः सेच्य ।  
 सतप्तं भवतापदावदहनज्वालाभिरेण प्रभो  
 धन्यास्ते भवदीक्षणक्षणगते पात्रीकृताः स्वाकृताः ॥

कथं तरेयं भवसिन्धुमेत  
 का वा गतिर्मे कतमोऽस्त्युपायः ।  
 जाने न किञ्चित्कृपयाव मा प्रभो  
 ससारदुःखक्षतिमातनुष्व ॥ ४२ ॥

तथा वदन्तः शरणागतः स्व  
 ससारदावानलतापतप्तम् ।  
 निरीक्ष्य कारुण्यरसार्द्रदृष्ट्या  
 दद्यादभीतिं सहसा महात्मा ॥ ४३ ॥

विद्वान्स तस्मा उपसत्तिमीयुषे  
 मुमुक्षवे साधु यथोक्तकारिणे ।

प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय  
तत्त्वोपदेश कृपयैव कुर्यात् ॥ ४४ ॥

मा भैष्ट विद्वस्तव नास्त्यपाय  
ससारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपाय ।  
येनैव याता यतयोऽस्य पार  
तमेव मार्गं तव निर्दिशाभि ॥ ४५ ॥

अस्त्युपायो महान्कश्चित्ससारभयनाशन ।  
तेन तर्त्विा भवाम्भोधि परमानन्दमाप्स्यसि ॥ ४६ ॥

वेदान्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम् ।  
तेनात्यन्तिकससारदुःखनाशो भवत्यलम् ॥ ४७ ॥

श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्मुमुक्षो  
मुक्तेर्हेतून्वक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गी ।  
यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य  
मोक्षोऽविद्याकल्पिताद्देहबन्धात् ॥ ४८ ॥

अज्ञानयोगात्परमात्मनस्तव  
ह्यनात्मबन्धस्तत एव ससृति ।

तयोर्विवेकोदितबोधवहि  
रज्ञानकार्यं प्रदहेत्समूलम् ॥ ४९ ॥

शिष्य उवाच—

कृपया श्रूयतां स्वामिन् प्रश्नोऽयं क्रियते मया ।  
यदुत्तरमहं श्रुत्वा कृतार्थं स्या भवन्मुखात् ॥ ५० ॥

को नाम बन्ध कथमेष आगत  
कथं प्रतिष्ठास्य कथं विमोक्ष ।  
कोऽसावनात्मा परमं क आत्मा  
तयोर्विवेकं कथमेतदुच्यताम् ॥ ५१ ॥

श्रीगुरुवाच—

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पावितं ते कुलं त्वया ।  
यद्विद्याबन्धमुक्त्या ब्रह्मीभवितुमिच्छसि ॥ ५२ ॥

ऋणमोचनकर्तारं पितुं सन्ति सुतादयः ।  
बन्धमोचनकर्ता तु स्वस्मादन्यो न कश्चन ॥ ५३ ॥

मस्तकन्यस्तभारादेर्दुःखमन्यैर्निवार्यते ।  
श्लुधादिकृतदुःखं तु विना स्वेन न केनचित् ॥ ५४ ॥

पथ्यमौषधसेवा च क्रियते येन रोगिणा ।  
आरोग्यसिद्धिर्दृष्टास्य नान्यानुष्ठितकर्मणा ॥ ५५ ॥

वस्तुस्वरूप स्फुटबोधचक्षुषा  
स्वेनैव वेद्य न तु पण्डितेन ।  
चन्द्रस्वरूप निजचक्षुषैव  
ज्ञातव्यमन्यैरवगम्यते किम् ॥ ५६ ॥

अविद्याकामकर्मादिपाशबन्ध विमोचितुम् ।  
क शक्नुयाद्विनात्मान कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५७ ॥

न योगेन न सारयेन कर्मणा नो न विद्यया ।  
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्ष सिध्यति नान्यथा ॥ ५८ ॥

वीणाया रूपसौन्दर्यं तन्त्रीवादनसौष्टवम् ।  
प्रजारञ्जनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते ॥ ५९ ॥

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम् ।  
वैदुष्यं विदुषा तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये ॥ ६० ॥

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।  
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ॥ ६१ ॥



शब्दजाल महारण्य चित्तभ्रमणकारणम् ।

अत प्रयत्नाज्ज्ञातव्य तत्त्वज्ञात्तत्त्वमात्मन ॥ ६२ ॥

अज्ञानसर्पदष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषध विना ।

किमु वेदैश्च शास्त्रैश्च किमु मन्त्रै किमौषधै ॥ ६३ ॥

न गच्छति विना पान व्याधिरौषधशब्दत ।

विनापरोक्षानुभव ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते ॥ ६४ ॥

अकृत्वा दृश्यविलयमज्ञात्वा तत्त्वमात्मन ।

बाह्यशब्दै कुतो मुक्तिशक्तिमात्रफलैर्नृणाम् ॥ ६५ ॥

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिलभूश्रियम् ।

राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति ॥ ६६ ॥

आप्तोक्तिं खनन तथोपरिशिलापाकर्षण स्वीकृतिं

निक्षेप समपेक्षते न हि बहि शब्दैस्तु निर्गच्छति ।

तद्ब्रह्मविदोपदेशमननध्यानादिभिर्लभ्यते

मायाकार्यतिरोहित स्वममल तत्त्व न दुर्युक्तिभि ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भवबन्धविमुक्तये ।

स्वैरेव यत्न कर्तव्यो रोगादेरिव पण्डितै ॥ ६८ ॥

यस्त्वयाद्य कृत प्रश्नो वरीयाञ्छास्त्रविन्मत ।  
सूत्रप्रायो निगूढार्थो ज्ञातव्यश्च मुमुक्षुभि ॥ ६९ ॥

शृणुष्ववावहितो विद्वन् यन्मया समुदीर्यते ।  
तदेतच्छ्रवणात्सद्यो भवबन्धाद्विमोक्ष्यसे ॥ ७० ॥

मोक्षस्य हेतु प्रथमो निगद्यते  
वैराग्यमत्यन्तमनित्यवस्तुषु ।  
तत शमश्चापि दमस्तितीक्षा  
न्यास प्रसक्ताखिलकर्मणा भृशम् ॥ ७१ ॥

तत श्रुतिस्तन्मनन सतत्त्व-  
ध्यान चिर नित्यनिरन्तर मुने ।  
ततोऽविकल्प परमेत्य विद्वा-  
निहैव निर्वाणसुख समृच्छति ॥ ७२ ॥

यद्बोद्धव्य तवेदानीमात्मानात्मविवेचनम् ।  
तदुच्यते मया सम्यक्कृत्वात्मन्यवधारय ॥ ७३ ॥

मज्जास्थिमेद, पलरक्तचर्मत्वगाह्वयैर्धातुभिरेभिरन्वितम् ।  
पादोरुवक्षोभुजपृष्ठमस्तकैरङ्गैरुपाङ्गैरुपयुक्तमेतत् ॥ ७४ ॥

अहं ममेति प्रथितं शरीरं  
 मोहास्पदं स्थूलमितीर्यते बुधैः ।  
 नभोनभस्वद्दहनाम्बुभूमयं  
 सूक्ष्माणि भूतानि भवन्ति तानि ॥ ७५ ॥

परस्पराशैर्मिलितानि भूत्वा  
 स्थूलानि च स्थूलशरीरहेतवः ।  
 मात्रास्तदीया विषया भवन्ति  
 शब्दादयः पञ्च सुखाय भोक्तुः ॥ ७६ ॥

य एषु मूढा विषयेषु बद्धा  
 रागोरुपाशेन सुदुर्दमेन ।  
 आयान्ति निर्यान्त्यथ ऊर्ध्वमुखैः  
 स्वकर्मदूतेन जवेन नीताः ॥ ७७ ॥

शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च  
 पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः ।  
 कुरङ्गमातङ्गपतङ्गमीन-  
 भृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ॥ ७८ ॥

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषादपि ।  
 विषं निहन्ति भोक्ताः द्रष्टारः चक्षुषाप्ययम् ॥ ७९ ॥

विषयाशामहापाशाद्यो विमुक्त सुदुस्त्यजात् ।  
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्य षट्शास्त्रवेद्यपि ॥ ८० ॥

आपातवैराग्यवतो मुमुक्षू  
भवाब्धिपार प्रतियातुमुद्यतान् ।  
आशाग्रहो मज्जयतेऽन्तराले  
निगृह्य कण्ठे विनिवर्त्य वेगात् ॥ ८१ ॥

विषयाख्यग्रहो येन सुविरक्त्यसिना हत ।  
स गच्छति भवाम्बोधे पार प्रत्यूहवर्जित ॥ ८२ ॥

विषमविषयमार्गं गच्छतोऽनच्छबुद्धे  
प्रतिपदमभिघातो मृत्युरप्येष सिद्ध ।  
हितसुजनगुरूक्त्या गच्छत स्वस्य युक्त्या  
प्रभवति फलसिद्धि सत्यमित्येव विद्धि ॥ ८३ ॥

मोक्षस्य काङ्क्षा यदि वै तवास्ति  
त्यजातिदूराद्विषयान्विष यथा ।  
पीयूषवत्तोषदयाक्षमार्जव-  
प्रशान्तिदान्तीर्भज नित्यमादरात् ॥ ८४ ॥

अनुक्षण यत्परिहृत्य कृत्य-  
मनाद्यविद्याकृतबन्धमोक्षणम् ।

देह परार्थोऽयममुष्य पोषणे

य सज्जते स स्वमनेन हन्ति ॥ ८५ ॥

शरीरपोषणार्थी सन्य आत्मान दिदृक्षते ।

ग्राह दारुधिया धृत्वा नदीं तर्तु स इच्छति ॥ ८६ ॥

मोह एव महामृत्युर्मुमुक्षोर्वपुरादिषु ।

मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपदमर्हति ॥ ८७ ॥

मोह जहि महामृत्यु देहदारसुतादिषु ।

य जित्वा मुनयो यान्ति तद्विष्णो परम पदम् ॥ ८८ ॥

त्वद्भासरुधिरस्त्रायुमेदोमज्जास्थिसकुलम् ।

पूर्ण मूर्धपुरीषाभ्या स्थूल निन्द्यमिद वपु ॥ ८९ ॥

पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्य स्थूलेभ्य पूर्वकर्मणा ।

समुत्पन्नमिद स्थूल भोगायतनमात्मन ।

अवस्था जागरस्तस्य स्थूलार्थानुभवो यत ॥ ९० ॥

बाह्येन्द्रियै स्थूलपदार्थसेवा

स्रक्कन्दनस्त्र्यादिविचित्ररूपाम् ।

करोति जीव स्वयमेतदात्मना

तस्मात्प्रशस्तिर्वपुषोऽस्य जागरे ॥ ९१ ॥

सर्वोऽपि बाह्य ससार पुरुषस्य यदाश्रय ।  
विद्धि देहमिदं स्थूल गृहवद्गृहमेधिन ॥ ९२ ॥

स्थूलस्य सभवजरामरणानि धर्मा  
स्थौल्यादयो बहुविधा शिशुताद्यवस्था ।  
वर्णाश्रमादिनियमा बहुधामया स्यु  
पूजावमानबहुमानमुखा विशेषा ॥ ९३ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि श्रवण त्वगक्षि  
घ्राण च जिह्वा विषयावबोधनात् ।  
वाक्पाणिपादा गुदमप्युपस्थ  
कर्मेन्द्रियाणि प्रवणानि कर्मसु ॥ ९४ ॥

निगद्यतेऽन्त करण मनो धी  
रहकृतिश्चित्तमिति स्ववृत्तिभि ।  
मनस्तु सकल्पविकल्पनादिभि  
बुद्धि पदार्थाध्यवसायधर्मत ॥ ९५ ॥

अत्राभिमानादहमित्यहकृति  
स्वार्थानुसन्धानगुणेन चित्तम् ॥ ९६ ॥

प्राणापानव्यानोदानसमाना भवत्यसौ प्राण ।  
स्वयमेव वृत्तिभेदाद्विकृतेभेदात्सुवर्णसलिलमिव ॥

वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च  
प्राणादिपञ्चाभ्रमुखाणि पञ्च ।  
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी  
पुर्यष्टक सूक्ष्मशरीरमाहु ॥ ९८ ॥

इदं शरीरं शृणु सूक्ष्मसञ्ज्ञित  
लिङ्गं त्वपञ्चाकृतभूतसंभवम् ।  
संवासनं कर्मफलानुभावकं  
स्वाज्ञानतोऽनादिरुपाधिरात्मनः ॥ ९९ ॥

स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था  
स्वप्नात्रशेषेण विभाति यत्र ।  
स्वप्ने तु बुद्धिः स्वयमेव जाग्र  
त्कालीनानानाविधवासनाभिः ।  
कर्त्रादिभावप्रतिपद्य राजते  
यत्र स्वयज्योतिरयं परात्मा ॥ १०० ॥

धीमात्रकोपाधिरशेषसाक्षी  
 न लिप्यते तत्कृतकर्मलेपै ।  
 यस्मादसङ्गस्तत एव कर्मभि  
 र्ने लिप्यते किञ्चिदुपाधिना कृतै ॥ १०१ ॥

सर्वव्यापृतिकरण लिङ्गमिदं स्याच्चिदात्मन पुंस ।  
 वास्यादिकमिव तक्षणस्तेनैवात्मा भवत्यसङ्गोऽयम् ॥

अन्धत्वमन्दत्वपटुत्वधर्मा  
 सौगुण्यवैगुण्यवशाद्धि चक्षुष ।  
 बाधिर्यमूकत्वमुखास्तथैव  
 श्रोत्रादिधर्मा न तु वेत्तुरात्मन ॥ १०३ ॥

उच्छ्वासनि श्वासविजृम्भणश्रुत  
 प्रस्पन्दनाद्युत्क्रमणादिका क्रिया ।  
 प्राणादिकर्माणि वदन्ति तज्ज्ञा  
 प्राणस्य धर्मावशनापिपासे ॥ १०४ ॥

अन्त करणमेतेषु चक्षुरादिषु वर्ष्मणि ।  
 अहमित्यभिमानेन तिष्ठत्याभासतेजसा ॥ १०५ ॥



अहकार स विज्ञेय कर्ता भोक्ताभिमान्ययम् ।  
सत्त्वादिगुणयोगेनावस्थात्रितयमश्नुते ॥ १०६ ॥

विषयाणामानुकूल्ये सुखी दुःखी विपर्यये ।  
सुखं दुःखं च तद्धर्मं सदानन्दस्य नात्मन ॥ १०७ ॥

आत्मार्थत्वेन हि प्रेयान्विषयो न स्वतः प्रियः ।  
स्वतः एव हि सर्वेषामात्मा प्रियतमो यतः ॥ १०८ ॥

तत आत्मा सदानन्दो नास्य दुःखं कदाचन ।  
यत्सुषुप्तौ निर्विषय आत्मानन्दोऽनुभूयते ।  
श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं च जाग्रति ॥ १०९ ॥

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिः

रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।

कार्यानुमेया सुधिचैव माया

यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥ ११० ॥

सन्नाप्यसन्नाप्यभयात्मिका नो

भिन्नाप्यभिन्नाप्यभयात्मिका नो ।

साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो  
महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा ॥ १११ ॥

शुद्धाद्वयब्रह्मविबोधनाश्या  
सर्पभ्रमो रज्जुविवेकतो यथा ।  
रजस्तम सत्त्वमिति प्रसिद्धा  
गुणास्तदीया प्रथितै स्वकार्यै ॥ ११२ ॥

विक्षेपशक्ती रजस क्रियात्मिका  
यत प्रवृत्ति प्रसृता पुराणो ।  
रागादयोऽस्या प्रभवन्ति नित्य  
दुःखादयो ये मनसो विकारा ॥ ११३ ॥

काम क्रोधो लोभदम्भाभ्यसूया  
हकारेर्ष्यामत्सराद्यास्तु घोरा ।  
धर्मा एते राजसा पुप्रवृत्ति-  
र्यस्मादेतत्तद्रजो बन्धहेतु ॥ ११४ ॥

षषावृतिर्नाम तमोगुणस्य  
शक्तिर्यया वस्त्ववभासतेऽन्यथा ।

सैषा निदान पुरुषस्य ससृते  
 विक्षेपशक्ते प्रसरस्य हेतु ॥ ११५ ॥

प्रज्ञावानपि पण्डितोऽपि चतुरोऽप्यत्यन्तसूक्ष्मार्थ-  
 ग्व्यालीढस्तमसा न वेत्ति बहुधा संबोधितोऽपि स्फुटम् ।  
 भ्रान्त्यारोपितमेव साधु कलयत्यालम्बते तद्गुणान्  
 हन्तासौ प्रबला दुरन्ततमस शक्तिर्महत्यावृति ॥

अभावना वा विपरीतभावना  
 सभावना विप्रतिपत्तिरस्या ।  
 ससर्गयुक्त न विमुञ्चति ध्रुव  
 विक्षेपशक्ति क्षपयत्यजस्रम् ॥ ११७ ॥

अज्ञानमालस्यजडत्वनिद्रा-  
 प्रमादमूढत्वमुखास्तमोगुणा ।  
 एतै प्रयुक्तो न हि वेत्ति किञ्चि  
 न्निद्रालुवत्स्तम्भवदेव तिष्ठति ॥ ११८ ॥

सस्व विशुद्ध जलवत्तथापि  
 ताभ्या मिलित्वा सरणाय कल्पते ।

यत्रात्मबिम्ब प्रतिबिम्बित स  
 न्प्रकाशयत्यर्क इवाखिल जडम् ॥ ११९ ॥

मिश्रस्य सत्त्वस्य भवन्ति धर्मा  
 स्त्वमानिताद्या नियमा यमाद्या ।  
 श्रद्धा च भक्तिश्च मुमुक्षुता च  
 दैवी च सपत्तिरसन्निवृत्ति ॥ १२० ॥

विशुद्धसत्त्वस्य गुणा प्रसाद  
 स्वात्मानुभूति परमा प्रशान्ति ।  
 तृप्ति प्रहर्ष परमात्मनिष्ठा  
 यथा सदानन्दरस समृच्छति ॥ १२१ ॥

अव्यक्तमेतन्निगुणैर्निरुक्त  
 तत्कारण नाम शरीरमात्मन ।  
 सुषुप्तिरेतस्य विभक्त्यवस्था  
 प्रलीनसर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्ति ॥ १२२ ॥

सर्वप्रकारप्रमितिप्रशान्ति-  
 बीजात्मनावस्थितिरेव बुद्धे ।

सुषुप्तिरत्रास्य किल प्रतीति  
किञ्चिन्न वेद्मीति जगत्प्रसिद्धे ॥ १२३ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनोहमादय  
सर्वे विकारा विषया सुखादय ।  
व्योमादिभूतान्यखिल च विश्व-  
मव्यक्तपर्यन्तमिदं ह्यनात्मा ॥ १२४ ॥

माया मायाकार्यं सर्वं महदादि देहपर्यन्तम् ।  
असदिदमनात्मतत्त्वं विद्धि त्वं मरुमरीचिकाकल्पम् ॥

अथ ते सप्रवक्ष्यामि स्वरूपं परमात्मनः ।  
यद्विज्ञाय नरो बन्धान्मुक्तं कैवल्यमश्नुते ॥ १२६ ॥

अस्ति कश्चित्स्वयं नित्यमहप्रत्ययलम्बनः ।  
अवस्थात्रयसाक्षी सन्पञ्चकोशविलक्षणः ॥ १२७ ॥

यो विजानाति सकलं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।  
बुद्धितद्बृत्तिसद्भावमभावमहमित्ययम् ॥ १२८ ॥

यः पश्यति स्वयं सर्वं यः न व्याप्नोति किञ्चन ।  
यश्चेतयति बुद्ध्यादि न तद्यः चेतयत्ययम् ॥ १२९ ॥

येन विश्वमिदं व्याप्तं यं न व्याप्नोति किञ्चन ।  
अभारूपमिदं सर्वं यं भान्तमनुभात्ययम् ॥ १३० ॥

यस्य सनिधिमात्रेण देहेन्द्रियमनोधियः ।  
विषयेषु स्वकीयेषु वर्तन्ते प्रेरिता इव ॥ १३१ ॥

अहकारादिदेहान्ता विषयाश्च सुखादयः ।  
वेद्यन्ते घटवद्येन नित्यबोधस्वरूपिणा ॥ १३२ ॥

एषोऽन्तरात्मा पुरुषः पुराणो  
निरन्तराखण्डसुखानुभूतिः ।  
सदैकरूपः प्रतिबोधमात्रो  
येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥ १३३ ॥

अत्रैव सत्त्वात्मनि धीगुहाया  
मव्याकृताकाश उरुप्रकाशः ।  
आकाश उच्चै रविवत्प्रकाशते  
स्वतेजसा विश्वमिदं प्रकाशयन् ॥ १३४ ॥

ज्ञाता मनोहकृतिविक्रियाणा  
देहेन्द्रियप्राणकृतक्रियाणाम् ।

अयोश्निवत्ताननु वर्तमानो

न चेष्टते नो विकरोति किञ्चन ॥ १३५ ॥

न जायते नो म्रियते न वर्धते

न क्षीयते नो विकरोति नित्य ।

विलीयमानेऽपि वपुष्यमुष्मि

न्न लीयते कुम्भ इवाम्बर स्वयम् ॥ १३६ ॥

प्रकृतिविकृतिभिन्न शुद्धबोधस्वभाव

सदसदिदमशेष भासयन्निर्विशेष ।

विलसति परमात्मा जाग्रदादिष्ववस्था-

स्वहमहमिति साक्षात्साक्षिरूपेण बुद्धे ॥ १३७ ॥

नियमितमनसामु त्व स्वमात्मानमात्म

न्ययमहमिति साक्षाद्विद्धि बुद्धिप्रसादात् ।

जनिमरणतरङ्गापारससारसिन्धु

प्रतर भव कृतार्थो ब्रह्मरूपेण सस्थ ॥ १३८ ॥

अत्रानात्मन्यहमिति मतिर्बन्ध एषोऽस्य पुस

प्राप्तोऽज्ञानाज्जननमरणक्लेशसपातहेतु ।

येनेवाय वपुरिदमसन्सत्यमित्यात्मबुद्ध्या  
पुष्यत्युक्षत्यवति विषयैस्तन्तुभि कोशकृडत् ॥१३९॥

अतस्मिस्तद्बुद्धि प्रभवति विमूढस्य तमसा  
विवेकाभावाद्धै स्फुरति भुजगे रज्जुधिपणा ।  
ततोऽनर्थव्रातो निपतति समादातुरधिक  
स्ततो योऽसद्ग्राह स हि भवति बन्ध शृणु सखे ॥

अखण्डनित्याद्वयबोधशक्त्या  
स्फुरन्तमात्मानमनन्तवैभवम् ।  
समावृणोत्यावृतिशक्तिरेषा  
तमोमयी राहुरिवार्कबिम्बम् ॥ १४१ ॥

तिरोभूते स्वात्मन्यमलतरतेजोवति पुमा  
ननात्मान मोहादहमिति शरीर कलयति ।  
तत कामक्रोधप्रभृतिभिरमु बन्धकगुणै  
पर विश्लेषाख्या रजस उरुशक्तिर्व्यथयति ॥ १४२ ॥

महामोहग्राहप्रसनगलितात्मावगमनो  
धियो नानावस्था स्वयमभिनयस्तद्गुणतया ।



अपारे ससारे विषयविषपूरे जलनिधौ  
निमज्जथोन्मज्जथाय भ्रमति कुमति कुत्सितगति ॥

भानुप्रभासजनिताभ्रपट्टि  
भानु तिरोधाय यथा विजृम्भते ।  
आत्मोदिताहकृतिरात्मतत्त्व  
तथा तिरोधाय विजृम्भते स्वयम् ॥ १४४ ॥

कबलितदिननाथे दुर्दिने सान्द्रमेघै  
व्यथयति हिमझञ्झावायुरग्नौ यथैतान् ।  
अविरततमसात्मन्यावृते मूढबुद्धिं  
क्षपयति बहुदुःखैस्तीव्रविक्षेपशक्ति ॥ १४५ ॥

एताभ्यामेव शक्तिभ्या बन्ध पुस समागत ।  
याभ्या विमोहितो देह मत्वात्मान भ्रमत्ययम् ॥ १४६ ॥

बीज ससृतिभूमिजस्य तु तमो देहात्मधीरङ्कुरो  
राग पल्लवमम्बु कर्म तु वपु स्कन्धोऽसव शाखिका ।  
अग्राणीन्द्रियसंहतिश्च विषया पुष्पाणि तु ख फल  
नानाकर्मसमुद्भव बहुविध भोक्तात्त जीव खग ॥

अज्ञानमूलोऽयमनात्मबन्धो  
 नैसर्गिकोऽनादिरनन्त ईरित ।  
 जन्माप्ययव्याधिजरादिदु ख-  
 प्रवाहताप जनयत्यमुष्य ॥ १४८ ॥

नास्त्रैर्न शस्त्रैरनिलेन वह्निना  
 च्छेत्तु न शक्यो न च कर्मकोटिभि ।  
 विवेकविज्ञानमहासिना विना  
 धातु प्रसादेन शितेन मञ्जुना ॥ १४९ ॥

श्रुतिप्रमाणैकमते स्वधर्म-  
 निष्ठा तयैवात्मविशुद्धिरस्य ।  
 विशुद्धबुद्धे परमात्मवेदन  
 तेनैव ससारसमूलनाश ॥ १५० ॥

कोशैरन्नमयाद्यै पञ्चभिरात्मा न सवृतो भाति ।  
 निजशक्तिसमुत्पन्नै शैवलपटलैरिवाम्बु वापीस्थम् ॥

तच्छैवालापनये सम्यक्सलिल प्रतीयते शुद्धम् ।  
 तृष्णासतापहर सद्य सौख्यप्रद पर पुस ॥ १५२ ॥

पञ्चानामपि कोशानामपवादे विभात्यय शुद्ध ।  
नित्यानन्दैकरस प्रत्यद्रूप पर स्वयज्योति ॥ १५३ ॥

आत्मानात्मविवेक कर्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा ।  
तेनैवानन्दी भवति स्व विज्ञाय सच्चिदानन्दम् ॥ १५४ ॥

मुञ्जादिषीकामिव दृश्यवर्गा-  
त्प्रत्यञ्चमात्मानमसङ्गमक्रियम् ।  
विविच्य तत्र प्रविलाप्य सर्व  
तदात्मना तिष्ठति य स मुक्त ॥ १५५ ॥

देहोऽयमन्नभवनोऽन्नमयस्तु कोशो  
ह्यन्नेन जीवति विनश्यति तद्विहीन ।  
त्वक्चर्ममासरुधिरास्थिपुरीषराशि-  
र्नाय स्वय भवितुमर्हति नित्यशुद्ध ॥ १५६ ॥

पूर्व जनेरपि मृतेरथ नायमस्ति  
जातक्षणक्षणगुणोऽनियतस्वभाव ।  
नैको जडश्च घटवत्परिदृश्यमान  
स्वात्मा कथ भवति भावविकारवेत्ता ॥ १५७ ॥

पाणिपादादिमान्देहो नात्मा व्यङ्गेऽपि जीवनात् ।  
तत्तच्छक्तेरनाशाच्च न नियम्यो नियामक ॥ १५८ ॥

देहतद्धर्मतत्कर्मतदवस्थादिसाक्षिण ।  
सत एव स्वत सिद्ध तद्वैलक्षण्यमात्मन ॥ १५९ ॥

शल्यराशिर्मांसलिप्तो मलपूर्णोऽतिकश्मल ।  
कथ भवेदय वेत्ता स्वयमेतद्विलक्षण ॥ १६० ॥

त्वङ्मासमेदोस्थिपुरीषराशा  
बहमर्ति मूढजन करोति ।  
विलक्षण वेत्ति विचारशीलो  
निजस्वरूप परमार्थभूतम् ॥ १६१ ॥

देहोऽहमित्येव जडस्य बुद्धि  
देहे च जीवे विदुषस्त्वहधी ।  
विवेकविज्ञानवतो महात्मनो  
ब्रह्माहमित्येव मति सदात्मनि ॥ १६२ ॥

अत्रात्मबुद्धिं त्यज मूढबुद्धे  
त्वङ्मासमेदोस्थिपुरीषराशौ ।

सर्वात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे  
 कुरुष्व शान्तिं परमाभजस्व ॥ १६३ ॥

देहेन्द्रियादावसति भ्रमोदिता  
 विद्वानहता न जहाति यावत् ।  
 तावन्न तस्यास्ति विमुक्तिवार्ता  
 प्यस्त्वेष वेदान्तनयान्तदर्शी ॥ १६४ ॥

छायाशरीरे प्रतिबिम्बगात्रे  
 यत्स्वप्नदेहे हृदि कल्पिताङ्गे ।  
 यथात्मबुद्धिस्तव नास्ति काचि  
 जीवच्छरीरे च तथैव मास्तु ॥ १६५ ॥

देहात्मधीरेव नृणामसद्धिया  
 जन्मादिदुःखप्रभवस्य बीजम् ।  
 यतस्ततस्त्व जहि ता प्रयत्ना-  
 त्यक्ते तु चित्ते न पुनर्भवाशा ॥ १६६ ॥

कर्मेन्द्रियैः पञ्चभिरञ्चितोऽय  
 प्राणो भवेत्प्राणमयस्तु कोश ।

येनात्मवानन्नमयोऽनुपूर्णं  
प्रवर्ततेऽसौ सकलक्रियासु ॥ १६७ ॥

नैवात्मापि प्राणमयो वायुविकारो  
गन्तागन्ता वायुवदन्तर्बहिरेष ।  
यस्मार्त्तिकचित्कापि न वेत्तीष्टमनिष्ट  
स्व वान्य वा किञ्चन नित्य परतन्त्र ॥ १६८ ॥

ज्ञानेन्द्रियाणि च मनश्च मनोमय स्या  
त्कोशो ममाहमिति वस्तुविकल्पहेतु ।  
सज्ञादिभेदकलनाकलितो बलीया-  
स्तत्पूर्वकोशमनुपूर्व्यं विजृम्भते य ॥ १६९ ॥

पञ्चेन्द्रियैः पञ्चभिरेव होतृभिः  
प्रचीयमानो विषयाज्यधारया ।  
जाज्वल्यमानो बहुवासनेन्धनैः  
मनोमयोऽग्निर्दहति प्रपञ्चम् ॥ १७० ॥

न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता  
मनो ह्यविद्या भवबन्धहेतु ।

तस्मिन्विनष्टे सकल विनष्ट

विजृम्भितेऽस्मिन्सकल विजृम्भते ॥ १७१ ॥

स्वप्नेऽर्थशून्ये सृजति स्वशक्त्या

भोक्त्रादि विश्व मन एव सर्वम् ।

तथैव जाग्रत्यापि नो विशेष-

स्तत्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणम् ॥ १७२ ॥

सुषुप्तिकाले मनसि प्रलीने

नैवास्ति किञ्चित्सकलप्रसिद्धे ।

अतो मन कल्पित एव पुंस

ससार एतस्य न वस्तुतोऽस्ति ॥ १७३ ॥

वायुनानीयते मेघ पुनस्तेनैव लीयते ।

मनसा कल्प्यते बन्धो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते ॥ १७४ ॥

देहादिसर्वविषये परिकल्प्य राग

बध्नाति तेन पुरुष पशुवद्गुणेन ।

वैरस्यमत्र विषवत्सुविधाय पश्चा-

देन विमोचयति तन्मन एव बन्धात् ॥ १७५ ॥

तस्मान्मन कारणमस्य जन्तो-

बन्धस्व मोक्षस्य च वा विधाने ।

बन्धस्व हेतुर्मलिन रजोगुणै

मोक्षस्य शुद्ध विरजस्तमस्कम् ॥ १७६ ॥

विवेकवैराग्यगुणातिरेका-

च्छुद्धत्वमासाद्य मनो विमुक्त्यै ।

भवत्यतो बुद्धिमतो मुमुक्षो

स्ताभ्या दृढाभ्या भवितव्यमग्रे ॥ १७७ ॥

मनो नाम महाव्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु ।

चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये मुमुक्षव ॥ १७८ ॥

मन प्रसूते विषयानशेषा-

न्स्थूलात्मना सूक्ष्मतया च भोक्तु ।

शरीरवर्णाश्रमजातिभेदा-

न्गुणक्रियाहेतुफलानि नित्यम् ॥ १७९ ॥

असङ्गचिद्रूपममु विमोह्य

देहेन्द्रियप्राणगुणैर्निबध्य ।



अहं ममेति भ्रमयत्यजस्र

मनः स्वकृत्येषु फलोपभुक्तिषु ॥ १८० ॥

अध्यासदोषात्पुरुषस्य ससृति-

रध्यासबन्धस्त्वमुनैव कल्पित ।

रजस्तमोदोषवतोऽविवेकिनो

जन्मादिदुःखस्य निदानमेतत् ॥ १८१ ॥

अतः प्राहुर्मनोऽविद्या पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ।

येनैव आम्यते विश्वं वायुनेवाभ्रमण्डलम् ॥ १८२ ॥

तन्मनः शोधनं कार्यं प्रयत्नेन मुमुक्षुणा ।

विशुद्धे सति चैतस्मिन्मुक्तिं करफलायते ॥ १८३ ॥

मोक्षैकसक्त्या विषयेषु रागः

निर्मूल्यं सन्यस्य च सर्वकर्म ।

सच्छ्रद्धया यः श्रवणादिनिष्ठो

रजःस्वभावः स धुनोति बुद्धे ॥ १८४ ॥

मनोमयो नापि भवेत्परात्मा

ह्याद्यन्तवत्त्वात्परिणामिभावात् ।

दुःखात्मकत्वाद्विषयत्वहेतो

द्रष्टा हि दृश्यात्मतया न दृष्ट ॥ १८५ ॥

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृत्तिः कर्तृलक्षणः ।

विज्ञानमयकोशः स्यात्पुंसः ससारकारणम् ॥ १८६ ॥

अनुव्रजश्चित्प्रतिबिम्बशक्ति-

र्विज्ञानसङ्गः प्रकृतेर्विकारः ।

ज्ञानक्रियावानहमित्यजस्र-

देहेन्द्रियादिष्वभिमन्यते भृशम् ॥ १८७ ॥

अनादिकालोऽयमहस्वभावो

जीवः समस्तव्यवहारबोधाः ।

करोति कर्माण्यनुपूर्ववासन-

पुण्यान्यपुण्यानि च तत्फलानि ॥ १८८ ॥

भुङ्क्ते विचित्रास्वपि योनिषु व्रज-

न्नायाति निर्यात्यथ ऊर्ध्वमेषः ।

अस्यैव विज्ञानमयस्य जाग्र-

त्स्वप्नाद्यवस्थाः सुखदुःखभोगः ॥ १८९ ॥

देहादिनिष्ठाश्रमधर्मकर्म  
 गुणाभिमान सतत ममेति ।  
 विज्ञानकोशोऽयमतिप्रकाश  
 प्रकृष्टसानिध्यवशात्परात्मन ।  
 अतो भवत्येष उपाधिरस्य  
 यदात्मधी ससरति भ्रमेण ॥ १९० ॥

योऽयं विज्ञानमय प्राणेषु हृदि स्फुरत्स्वयज्योति ।  
 कूटस्थ सन्नात्मा कर्ता भोक्ता भवत्युपाधिस्थ ॥ १९१ ॥

स्वयं परिच्छेदमुपेत्य बुद्धे  
 स्तादात्म्यदोषेण परं मृषात्मन ।  
 सर्वात्मकं सन्नपि वीक्षते स्वयं  
 स्वतः पृथक्त्वेन मृदो घटानिव ॥ १९२ ॥

उपाधिसबन्धवशात्परात्मा  
 प्युपाधिधर्माननुभाति तद्गुण ।  
 अयोविकारानविकारिवह्निव  
 त्सदैकरूपोऽपि परं स्वभावात् ॥ १९३ ॥

शिष्य उवाच—

भ्रमेणाप्यन्यथा वास्तु जीवभाव परात्मन ।  
तदुपाधेरनादित्वान्नानादेर्नाश इष्यते ॥ १९४ ॥

अतोऽस्य जीवभावोऽपि नित्यो भवति ससृति ।  
न निवर्तेत तन्मोक्ष कथं मे श्रीगुरो वद ॥ १९५ ॥

श्रीगुरुवाच—

सम्यक्पृष्ट त्वया विद्वन् सावधानेन तच्छृणु ।  
प्रामाणिकी न भवति भ्रान्त्या मोहितकल्पना ॥ १९६ ॥

भ्रान्तिं विना त्वसङ्गस्य निष्क्रियस्य निराकृते ।  
न घटेतार्थसंबन्धो नभसो नीलतादिवत् ॥ १९७ ॥

स्वस्य द्रष्टुर्निर्गुणस्याक्रियस्य  
प्रत्यग्बोधानन्दरूपस्य बुद्धे ।  
भ्रान्त्या प्राप्तो जीवभावो न सत्यो  
मोहापाये नास्त्यवस्तु स्वभावात् ॥ १९८ ॥

यावद्भ्रान्तिस्तावदेवाख्य सत्ता  
मिथ्याज्ञानोज्झृम्भितस्य प्रमादात् ।

रज्ज्वा सर्पो भ्रान्तिकालीन एव  
भ्रान्तेर्नाशे नैव सर्पोऽस्ति तद्वत् ॥ १९९ ॥

अनादित्वमविद्याया कार्यस्यापि तथेज्यते ।  
उत्पन्नाया तु विद्यायामविद्यकमनाद्यपि ॥ २०० ॥

प्रबोधे स्वप्नवत्सर्वे सहमूल विनश्यति ।  
अनाद्यपीद नो नित्य प्रागभाव इव स्फुटम् ॥ २०१ ॥

अनादेरपि विध्वंस प्रागभावस्य वीक्षित ।  
यद्बुद्ध्युपाधिसबन्धात्परिकल्पितमात्मनि ॥ २०२ ॥

जीवत्व न ततोऽन्यत्तु स्वरूपेण विलक्षणम् ।  
सबन्ध स्वात्मनो बुद्ध्या मिथ्याज्ञानपुर सर ॥ २०३ ॥

विनिवृत्तिर्भवेत्तस्य सम्यग्ज्ञानेन नान्यथा ।  
ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञान सम्यग्ज्ञान श्रुतेर्मतम् ॥ २०४ ॥

तदात्मानात्मनो सम्यग्विवेकेनैव सिध्यति ।  
ततो विवेक कर्तव्य प्रत्यगात्मासदात्मनो ॥ २०५ ॥

जल पङ्कवदस्पष्ट पङ्कापाये जल स्फुटम् ।  
यथा भाति तथात्मापि दोषाभावे स्फुटप्रभ ॥ २०६ ॥

असन्निवृत्तौ तु सदात्मन स्फुट-  
 प्रतीतिरेतस्य भवेत्प्रतीच ।  
 ततो निरास करणीय एवा  
 सदात्मन साध्वहमादिवस्तुन ॥ २०७ ॥

अतो नाय परात्मा स्याद्विज्ञानमयशब्दभाक् ।  
 विकारित्वाज्जडत्वाच्च परिच्छिन्नत्वहेतुत ।  
 दृश्यत्वाच्चभिचारित्वान्नानित्यो नित्य इष्यते ॥ २०८ ॥

आनन्दप्रतिबिम्बचुम्बिततनुर्वृत्तिस्तमोज्ज्वलिभता  
 स्यादानन्दमय प्रियादिगुणक स्वेष्टार्थलाभोदयः ।  
 पुण्यस्यानुभवे विभाति कृतिनामानन्दरूप स्वय  
 भूत्वा नन्दति यत्र साधु तनुभृन्माल प्रयत्न विना ॥

आनन्दमयकोशस्य सुषुप्तौ स्फूर्तिरुत्कटा ।  
 स्वप्नजागरयोरीषदिष्टसदर्शनादिना ॥ २१० ॥

नैवायमानन्दमय परात्मा  
 सोपाधिकत्वात्प्रकृतेर्विकारात् ।  
 कार्यत्वहेतो सुकृतक्रियाया  
 विकारसघातसमाहितत्वात् ॥ २११ ॥

पञ्चानामपि कोशाना निषेधे युक्तितः कृते ।  
तन्निषेधावधि साक्षी बोधरूपोऽवशिष्यते ॥ २१२ ॥

योऽयमात्मा स्वयज्योति पञ्चकोशविलक्षण ।  
अवस्थात्रयसाक्षी सन्निर्विकारो निरञ्जन ।  
सदानन्द स विज्ञेय स्वात्मत्वेन विपश्चिता ॥ २१३ ॥

शिष्य उवाच—

मिथ्यात्वेन निषिद्धेषु कोशेष्वेतेषु पञ्चसु ।  
सर्वाभाव विना किञ्चिन्न पश्याम्यत्र हे गुरो ।  
विज्ञेय किमु वस्त्वस्ति स्वात्मनात्र विपश्चिता ॥ २१४ ॥

श्रीगुरुवाच—

सत्यमुक्त त्वया विद्वन् निपुणोऽसि विचारणे ।  
अहमादिविकारास्ते तदभावोऽयमप्यथ ॥ २१५ ॥

सर्वे येनानुभूयन्ते य स्वय नानुभूयते ।  
तमात्मान वेदितार विद्धि बुद्ध्या सुसूक्ष्मया ॥ २१६ ॥

तत्साक्षिक भवेत्तद्यद्येनानुभूयते ।  
कस्याप्यननुभूतार्थे साक्षित्व नोपयुज्यते ॥ २१७ ॥

असौ स्वसाक्षिको भावो यत स्वेनानुभूयते ।  
अत पर स्वय साक्षात्प्रत्यगात्मा न चेतर ॥ २१८ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतर योऽसौ समुज्जृम्भते  
प्रत्यग्रूपतया सदाहमहमित्यन्त स्फुरन्नोकधा ।  
नानाकारविकारभाजिन इमान्पश्यन्नहधीमुखा-  
धित्यानन्दचिदात्मना स्फुरति त विद्धि स्वमेत हृदि ॥

घटोदके बिम्बितमर्कबिम्ब  
मालोक्य मूढो रविमेव मन्यते ।  
तथा चिदाभासमुपाधिसस्थ  
भ्रान्त्याहमित्येव जडोऽभिमन्यते ॥ २२० ॥

घट जल तद्रतमर्कबिम्ब  
विहाय सर्वं दिवि वीक्ष्यतेऽर्कं  
तटस्थितस्तन्नितयावभासक  
स्वयप्रकाशो विदुषा यथा तथा ॥ २२१ ॥

देह धिय चित्प्रतिबिम्बमेत  
विसृज्य बुद्धौ निहित गुहायाम् ।



द्रष्टारमात्मानमखण्डबोध  
सर्वप्रकाश सदसद्विलक्षणम् ॥ २२२ ॥

नित्य विभु सर्वगत सुसूक्ष्म-  
मन्तर्बहि शून्यमनन्यमात्मन ।  
विज्ञाय सम्यङ्निजरूपमेत-  
त्पुमान्विपाप्मा विरजा विमृत्यु ॥ २२३ ॥

विशोक आनन्दघनो विपाश्चि  
त्स्वय कुतश्चिन्न विभेति कश्चित् ।  
नान्योऽस्ति पन्था भवबन्धमुक्ते-  
र्विना स्वतत्त्वावगम मुमुक्षो ॥ २२४ ॥

ब्रह्माभिन्नत्वविज्ञान भवमोक्षस्य कारणम् ।  
येनाद्वितीयमानन्द ब्रह्म सपद्यते बुध ॥ २२५ ॥

ब्रह्मभूतस्तु ससृत्यै विद्वान्भावर्तते पुन ।  
विज्ञातव्यमत सम्यग्ब्रह्माभिन्नत्वमात्मन ॥ २२६ ॥

सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म विशुद्ध पर स्वत सिद्धम् ।  
नित्यानन्दैकरस प्रत्यगभिन्न निरन्तर जयति ॥ २२७ ॥

सदिद परमाद्वैत स्वस्मादन्यस्य वस्तुनोऽभावात् ।  
न ह्यन्यदस्ति किञ्चित्सम्यक्परतत्त्वबोधसुदशायाम् ॥

यदिद सकल विश्व नानारूप प्रतीतमज्ञानात् ।  
तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेषभावनादोषम् ॥ २२९ ॥

मृत्कार्यभूतोऽपि मृदो न भिन्न  
कुम्भोऽस्ति सर्वत्र तु मृत्स्वरूपात् ।  
न कुम्भरूप पृथगस्ति कुम्भ  
कुतो मृषाकल्पितनाममात्र ॥ २३० ॥

केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूप  
घटस्य सदृशयितु न शक्यते ।  
अतो घटः कल्पित एव मोहा  
न्मृदेव सत्य परमार्थभूतम् ॥ २३१ ॥

सद्ब्रह्मकार्य सकल सदेव  
सन्मात्रमेतन्न ततोऽन्यदस्ति ।  
अस्तीति यो वक्ति न तस्य मोहो  
विनिर्गतो निद्रितवत्प्रजल्प ॥ २३२ ॥

ब्रह्मैवेद विश्वमित्येव वाणी  
 श्रौती ब्रूतेऽथर्वनिष्ठा वरिष्ठा ।  
 तस्मात्सर्वं ब्रह्ममात्रं हि विश्वं  
 नाधिष्ठानाद्भिन्नतारोपितस्य ॥ २३३ ॥

सत्यं यदि स्याज्जगदेतदात्मनो-  
 ऽनन्तत्वहानिर्निगमाप्रमाणता ।  
 असत्यवादित्वमपीशितुं स्या  
 न्नैतत्त्रयं साधुं हितं महात्मनाम् ॥ २३४ ॥

ईश्वरो वस्तुतत्त्वज्ञो न चाहं तेष्ववस्थितः ।  
 न च मत्स्थानि भूतानीत्येवमेव व्यचीकथत् ॥ २३५ ॥

यदि सत्यं भवेद्विश्वं सुषुप्तावुपलभ्यताम् ।  
 यन्नोपलभ्यते किञ्चिदतोऽसत्स्वप्नवन्मृषा ॥ २३६ ॥

अतः पृथङ्नास्ति जगत्परात्मनः  
 पृथक्प्रतीतिस्तु मृषा गुणादिवत् ।  
 आरोपितस्यास्ति किमर्थवत्ता  
 धिष्ठानमाभाति तथा भ्रमेण ॥ २३७ ॥

भ्रान्तस्य यद्यद्भ्रमत प्रतीत  
 ब्रह्मैव तत्तद्रजत हि शुक्ति ।  
 इदतया ब्रह्म सदैव रूप्यते  
 त्वारोपित ब्रह्मणि नाममात्रम् ॥ २३८ ॥

अत पर ब्रह्म सदद्वितीय  
 विशुद्धविज्ञानघन निरञ्जनम् ।  
 प्रशान्तमाद्यन्तविहीनमक्रिय  
 निरन्तरानन्दरसस्वरूपम् ॥ २३९ ॥

निरस्तमायाकृतसर्वभेद  
 नित्य ध्रुव निष्कलमप्रमेयम् ।  
 अरूपमव्यक्तमनाख्यमव्यय  
 ज्योति स्वय किञ्चिदिद चकास्ति ॥ २४० ॥

ज्ञातृज्ञेयज्ञानशून्यमनन्त निर्विकल्पकम् ।  
 केवलाखण्डचिन्मात्र पर तत्त्व विदुर्बुधा ॥ २४१ ॥

अहेयमनुपादेय मनोवाचामगोचरम् ।  
 अप्रमेयमनाद्यन्त ब्रह्म पूर्णं महन्मह ॥ २४२ ॥

तत्त्वपदाभ्यामभिधीयमानयो  
 ब्रह्मात्मनो शोधितयोर्यदीत्थम् ।  
 श्रुत्या तयोस्तत्त्वमसीति सम्य  
 गेकत्वमेव प्रतिपाद्यते मुहु ॥ २४३ ॥

पेक्ष्य तयोर्लक्षितयोर्न घाच्ययो-  
 निर्गद्यतेऽन्योन्यविरुद्धधर्मिणो ।  
 खद्योतभान्वोरिव राजभृत्ययो  
 कूपाम्बुराशयो परमाणुमेवौ ॥ २४४ ॥

तयोर्विरोधोऽयमुपाधिकल्पितो  
 न वास्तव कश्चिदुपाधिरेष ।  
 ईशस्य माया महदादिकारण  
 जीवस्य कार्यं शृणु पञ्च कोशा ॥ २४५ ॥

पतावुपाधी परजीवयोस्तयो  
 सम्यङ् निरासे न परो न जीव ।  
 राज्य नरेन्द्रस्य भट्टस्य खेटक  
 स्तयोरपोहे न भट्टो न राजा ॥ २४६ ॥

अथात आदेश इति श्रुति स्वय  
 निषेधति ब्रह्मणि कल्पित द्वयम् ।  
 श्रुतिप्रमाणानुगृहीतयुक्त्या  
 तयोर्निरास करणीय एवम् ॥ २४७ ॥

नेद नेद कल्पितत्वाच्च सत्य  
 रज्जौ दृष्टव्यालवत्स्वप्नवच्च ।  
 इत्थ दृश्य साधु युक्त्या व्यपोह्य  
 ज्ञेय पश्चादेकभावस्तयोर्य ॥ २४८ ॥

ततस्तु तौ लक्षणया सुलक्ष्यौ  
 तयोरखण्डैकरसत्वसिद्धये ।  
 नाल जहत्या न तथाजहत्या  
 किं तूभयार्थैकतयैव भाव्यम् ॥ २४९ ॥

स देवदत्तोऽयमितीह चैकता  
 विरुद्धधर्माशमपास्य कथ्यते ।  
 यथा तथा तत्त्वमसीति वाक्ये  
 विरुद्धधर्मानुभयत्र हित्वा ॥ २५० ॥

सलक्ष्य चिन्मात्रतया सदात्मनो  
 रखण्डभाव परिचीयते बुधै ।  
 एव महावाक्यशतेन कथ्यते  
 ब्रह्मात्मनोरैक्यमखण्डभाव ॥ २५१ ॥

अस्थूलमित्येतदसन्निरस्य  
 सिद्ध स्वतो व्योमवदप्रतर्क्यम् ।  
 अतो मृषामात्रमिदं प्रतीत  
 जहीहि यत्स्वात्मतया गृहीतम् ।  
 ब्रह्माहमित्येव विशुद्धबुद्ध्या  
 विद्धि स्वमात्मानमखण्डबोधम् ॥ २५२ ॥

मृत्कार्यं सकल घटादि सतत मृन्मात्रमेवाभित  
 स्तद्वत्सञ्जनित सदात्मकमिदं सन्मात्रमेवाखिलम् ।  
 यस्मान्नास्ति सत पर किमपि तत्सत्य स आत्मा स्वय  
 तस्मात्तत्त्वमसि प्रशान्तममल ब्रह्माद्वय यत्परम् ॥

निद्राकल्पितदेशकालविषयज्ञानादि सर्वं यथा  
 मिथ्या तद्वदिहापि जाग्रति जगत्स्वाज्ञानकार्यत्वन ।  
 यस्मादेवमिदं शरीरकरणप्राणाहमाद्यप्यस  
 त्स्मात्तत्त्वमसि प्रशान्तममल ब्रह्माद्वय यत्परम् ॥

जातिनीतिकुलगोत्रदूरग  
 नामरूपगुणदोषवर्जितम् ।  
 देशकालविषयातिवर्ति य-  
 द्ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥

यत्पर सकलवागगोचर  
 गोचर विमलबोधचक्षुष ।  
 शुद्धचिद्धनमनादिवस्तु य  
 द्ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २५६ ॥

षड्भिरूर्मिभिरयोगि योगिहृ  
 द्भावित न करणैर्विभावितम् ।  
 बुद्ध्यवेद्यमनवद्यभूति य-  
 द्ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २५७ ॥

भ्रान्तिकल्पितजगत्कलाश्रय  
 स्वाश्रय च सदसद्विलक्षणम् ।  
 निष्कल निरुपमानमृद्धिम-  
 द्ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २५८ ॥



जन्मवृद्धिपरिणत्यपक्षय

याधिनाशनविहीनमव्ययम् ।

विश्वसृष्ट्यवनघातकारण

ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २५९ ॥

अस्तभेदमनपास्तलक्षण

निस्तरङ्गजलराशिनिश्चलम् ।

नित्यमुक्तमविभक्तमूर्ति य

ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २६० ॥

एकमेव सदनेककारण

कारणान्तरनिरासकारणम् ।

कार्यकारणविलक्षण स्वय

ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥

निर्विकल्पकमनल्पमक्षर

यत्क्षराक्षरविलक्षण परम् ।

नित्यमव्ययसुख निरञ्जन

ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २६२ ॥

यद्विभाति सद्नेकधा भ्रमा  
 भ्रामरूपगुणविक्रियात्मना ।  
 हेमवत्स्वयमविक्रिय सदा  
 ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २६३ ॥

यच्चकास्त्यनपर परात्पर  
 प्रत्यगेकरसमात्मलक्षणम् ।  
 सत्यचित्सुखमनन्तमव्यय  
 ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥ २६४ ॥

उक्तमर्थमिममात्मनि स्वय  
 भावय प्रथितयुक्तिभिर्धिया ।  
 सशयादिरहित कराम्बुव  
 तेन तत्त्वनिगमो भविष्यति ॥ २६५ ॥

•  
 स्व बोधमात्र परिशुद्धतत्त्व  
 विज्ञाय सधे नृपवच्च सैन्ये ।  
 तदात्मनैवात्मनि सर्वदा स्थितो  
 विलापय ब्रह्मणि दृश्यजातम् ॥ २६६ ॥

बुद्धौ गुहाया सदसद्विलक्षण  
 ब्रह्मास्ति सत्य परमद्वितीयम् ।  
 तदात्मना योऽत्र वसेद्गुहाया  
 पुनर्न तस्याङ्गुहाप्रवेश ॥ २६७ ॥

ज्ञाते वस्तुन्यपि बलवती वासनानादिरेषा  
 कर्ता भोक्ताप्यहमिति दृढा यास्य ससारहेतु ।  
 प्रत्यग्दृष्ट्यात्मनि निवसता सापनेया प्रयत्ना-  
 न्मुक्तिं प्राहुस्तदिह मुनयो वासनातानव यत् ॥ २६८ ॥

अह ममेति यो भावो देहाक्षादावनात्मनि ।  
 अभ्यासोऽय निरस्तव्यो विदुषा स्वात्मनिष्ठया ॥ २६९ ॥

ज्ञात्वा स्व प्रत्यगात्मान बुद्धितद्धृतिसाक्षिणम् ।  
 सोऽहमित्येष सद्धृत्यानात्मन्यात्ममतिं जहि ॥ २७० ॥

लोकानुवर्तन त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनम् ।  
 शास्त्रानुवर्तन त्यक्त्वा स्वाध्यासापनय कुरु ॥ २७१ ॥

लोकवासनया जन्तो शास्त्रवासनयापि च ।  
 देहवासनया ज्ञान यथावन्नैव जायते ॥ २७२ ॥

ससारकारागृहमोक्षमिच्छो-

रयोमय पादनिबद्धशृङ्खलम् ।

वदन्ति तज्ज्ञा पटुवासनात्रय

योऽस्माद्विमुक्त समुपैति मुक्तिम् ॥ २७३ ॥

जलादिसपर्कवशात्प्रभूत-

दुर्गन्धधूतागरुदिव्यवासना ।

सघर्षणेनैव विभाति सम्य

ग्विधूयमाने सति बाह्यगन्धे ॥ २७४ ॥

अन्त श्रितानन्तदुरन्तवासना

धूलीविलिता परमात्मवासना ।

प्रज्ञातिसघर्षणतो विशुद्धा

प्रतीयते चन्दनगन्धवत्स्फुटा ॥ २७५ ॥

अनात्मवासनाजालैस्तिरोभूतात्मवासना ।

नित्यात्मनिष्ठया तेषा नाशे भाति स्वय स्फुटा ॥ २७६ ॥

यथा यथा प्रत्यगवस्थित मन

स्तथा तथा मुञ्चति बाह्यवासना ।

नि शेषमोक्षे सति वासनाना  
मात्मानुभूति प्रतिबन्धशून्या ॥ २७७ ॥

स्वात्मन्येव सदा स्थित्या मनो नश्यति योगिन ।  
वासनाना क्षयश्चात स्वाध्यासापनय कुरु ॥ २७८ ॥

तमो द्वाभ्या रज सत्त्वात्सत्त्व शुद्धेन नश्यति ।  
तस्मात्सत्त्वमवष्टभ्य स्वाध्यासापनय कुरु ॥ २७९ ॥

प्रारब्ध पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चल ।  
धैर्यमालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनय कुरु ॥ २८० ॥

नाह जीव पर ब्रह्मेत्यतद्व्यावृत्तिपूर्वकम् ।  
वासनावेगत प्राप्तस्वाध्यासापनय कुरु ॥ २८१ ॥

श्रुत्या युक्त्या स्वानुभूत्या ज्ञात्वा सार्वान्ममात्मन ।  
क्वचिदाभासत प्राप्तस्वाध्यासापनय कुरु ॥ २८२ ॥

अन्नदानविसर्गाभ्यामीषन्नास्ति क्रिया मुने ।  
तदेकनिष्ठया नित्य स्वाध्यासापनय कुरु ॥ २८३ ॥

तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थब्रह्मात्मैकत्वबोधत ।  
ब्रह्मण्यात्मत्वदाढ्याय स्वाध्यासापनय कुरु ॥ २८४ ॥

अहभावस्य देहेऽस्मिन्नि शेषविलयावधि ।  
सावधानेन युक्तात्मा स्वाध्यासापनय कुरु ॥ २८५ ॥

प्रतीतिर्जीवजगतो स्वप्नवद्भाति यावता ।  
तावन्निरन्तरं विद्वन् स्वाध्यासापनय कुरु ॥ २८६ ॥

निद्राया लोकवार्ताया शब्दादेरपि विस्मृते ।  
क्वचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि ॥ २८७ ॥

मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमासमयं वपुः ।  
त्यक्त्वा चाण्डालवद्दूरं ब्रह्मीभूय कृती भव ॥ २८८ ॥

घटाकाशं महाकाशं इवात्मानं परात्मनि ।  
विलाप्याखण्डभावेन तूष्णीं भव सदा मुने ॥ २८९ ॥

स्वप्रकाशमधिष्ठानं स्वयंभूय सदात्मना ।  
ब्रह्माण्डमपि पिण्डाण्डं त्यज्यतां मलभाण्डवत् ॥ २९० ॥

चिदात्मनि सदानन्दे देहारूढामहधियम् ।  
निवेश्य लिङ्गमुत्सृज्य केवलो भव सर्वदा ॥ २९१ ॥

यत्रैष जगदाभासो दर्पणान्तं पुरं यथा ।  
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कृतकृत्यो भविष्यसि ॥

यत्सत्यभूत निजरूपमाद्य  
 चिद्विद्वयानन्दमरूपमक्रियम् ।  
 तदेत्य मिथ्यावपुरुत्सृजैत-  
 च्छैल्लूषवद्वेषमुपात्तमात्मन ॥ २९३ ॥

सर्वात्मना दृश्यमिदं मृषैव  
 नैवाहमर्थं क्षणिकत्वदर्शनात् ।  
 जानाम्यहं सर्वमिति प्रतीति  
 कुतोऽहमादे क्षणिकस्य सिद्ध्येत् ॥ २९४ ॥

अहपदार्थस्त्वहमादिसाक्षी  
 नित्य सुषुप्तावपि भावदर्शनात् ।  
 ब्रूते ह्यजो नित्य इति श्रुति स्वय  
 तत्प्रत्यगात्मा सदसद्विलक्षण ॥ २९५ ॥

विकारिणा सर्वविकारवेत्ता  
 नित्योऽविकारो भवितुं समर्हति ।  
 मनोरथस्वप्नसुषुप्तिषु स्फुट  
 पुन पुनर्दृष्टमसत्त्वमेतयो ॥ २९६ ॥

अतोऽभिमान त्यज मासपिण्डे  
 पिण्डाभिमानिन्यपि बुद्धिकल्पिते ।  
 कालत्रयाबाध्यमखण्डबोध  
 ज्ञात्वा स्वमात्मानमुपैहि शान्तिम् ॥ २९७ ॥

त्यजाभिमान कुलगोत्रनाम  
 रूपाश्रमेष्वार्द्रशवाश्रितेषु ।  
 लिङ्गस्य धर्मानपि कर्तृतादी-  
 स्त्यक्त्वा भवाखण्डसुखस्वरूप ॥ २९८ ॥

सन्त्यन्ये प्रतिबन्धा पुस ससारहेतवो दृष्टा ।  
 नेषामेषा मूल प्रथमविकागे भवत्यहकार ॥ २९९ ॥

यावत्स्यात्स्वस्य सबन्धोऽहकारेण दुर्गत्मना ।  
 तावन्न लेशमात्रापि मुक्तिवार्ता विलक्षणा ॥ ३०० ॥

अहकारग्रहान्मुक्त स्वरूपमुपपद्यते ।  
 चन्द्रवद्विमल पूर्ण सदानन्द स्वयंप्रभ ॥ ३०१ ॥

यो वा पुरैषोऽहमिति प्रतीनो  
 बुद्ध्या विकल्पस्तमसानिमूढया ।



तस्यैव नि शेषतया विनाशे

ब्रह्मात्मभाव प्रतिबन्धशून्य ॥ ३०२ ॥

ब्रह्मानन्दनिधिर्महाबलवताहकारघोराहिना

सवेष्टयात्मनि रक्ष्यत गुणमयैश्चण्डैस्त्रिभिर्मस्तकै ।

विज्ञानारयमहासिना द्युतिमता विच्छिद्य शीर्षत्रय

निर्मूल्याहिमिम निधिं सुखकर धीरोऽनुभोक्तु क्षम ॥

यावद्वा यत्किञ्चिद्विषदोषस्फूर्तिरस्ति चेद्देहे ।

कथमारोग्याय भवेत्तद्वदहतापि योगिनो मुक्त्यै ॥३०४॥

अहमोऽत्यन्तनिवृत्त्या तत्कृतनानाविकल्पसहत्या ।

प्रत्यक्त्वविवेकादयमहमस्मोति विन्दते तत्त्वम् ॥ ३०५ ॥

अहकर्तर्यस्मिन्नहमिति मतिं मुञ्च सहसा

विकारात्मन्यात्मप्रतिफलजुषि स्वस्थितिमुषि ।

यदध्यासात्प्राप्ता जनिमृतिजरा दु खबहुला

प्रतीचश्चिन्मूर्तेस्तव सुखतनो ससृतिरियम् ॥३०६॥

सदेकरूपस्य चिदात्मनो विभो-  
 रानन्दमूर्तेरनवद्यकीर्ते ।  
 नैवान्यथा क्वाप्यविकारिणस्ते  
 विनाहमध्यासममुष्य ससृति ॥ ३०७ ॥

तस्मादहकारमिम स्वशत्रु  
 भोक्तुर्गले कण्टकवत्प्रतीतम् ।  
 विच्छिद्य विज्ञानमहासिना स्फुट  
 भुङ्क्वात्मसाम्राज्यसुख यथेष्टम् ॥ ३०८ ॥

ततोऽहमादेर्विनिवर्त्य वृत्ति  
 सत्यक्तराग परमार्थलाभात् ।  
 तूष्णीं समास्स्वात्मसुखानुभूत्या  
 पूर्णात्मना ब्रह्मणि निर्विकल्प ॥ ३०९ ॥

समूलकृत्तोऽपि महानह पुन-  
 व्युल्लेखित ख्याद्यदि चेतसा क्षणम् ।  
 सजीव्य विक्षेपशत करोति  
 नभस्वता प्रावृषि वारिदो यथा ॥ ३१० ॥

निगृह्य शत्रोरहमोऽवकाश  
 क्वचिन्न देयो विषयानुचिन्तया ।  
 स एव सजीवनहेतुरस्य  
 प्रक्षीणजम्बीरतरोरिवाम्बु ॥ ३११ ॥

देहात्मना सस्थित एव कामी  
 विलक्षण कामयिता कथ स्यात् ।  
 अतोऽर्थसधानपरत्वमेव  
 भेदप्रसक्त्या भवबन्धहेतु ॥ ३१२ ॥

कार्यप्रवर्धनाद्बीजप्रवृद्धि परिदृश्यते ।  
 कार्यनाशाद्बीजनाशस्तस्मात्कार्य निरोधयेत् ॥ ३१३ ॥

वासनावृद्धित कार्य कार्यवृद्ध्या च वासना ।  
 वर्धते सर्वथा पुस ससारो न निवर्तते ॥ ३१४ ॥

ससारबन्धविच्छिद्यै तद्द्वय प्रदहेद्यति ।  
 वासनावृद्धिरेताभ्या चिन्तया क्रियया बहि ॥ ३१५ ॥

ताभ्या प्रवर्धमाना सा सूते ससृतिमात्मन ।  
 त्रयाणा च क्षयोपाय सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ ३१६ ॥

सर्वत्र सर्वत सर्व ब्रह्ममात्रावलोकनम् ।  
सद्भाववासनादाढ्यात्तत्रय लयमश्नुते ॥ ३१७ ॥

क्रियानाशे भवेच्चिन्तानाशोऽस्माद्वासनाक्षय ।  
वासनाप्रक्षयो मोक्ष स जीवन्मुक्तिरिष्यते ॥ ३१८ ॥

सद्वासनास्फूर्तिविजृम्भणे सति  
ह्यसौ विलीना त्वहमादिवासना ।  
अतिप्रकृष्टाप्यरुणप्रभाया  
विलीयते साधु यथा तमिस्रा ॥ ३१९ ॥

तमस्तम कार्यमनर्थजाल  
न दृश्यते सत्युदिते दिनेशे ।  
तथाद्वयानन्दरसानुभूतौ  
नैवास्ति बन्धो न च दुःखगन्ध ॥ ३२० ॥

दृश्य प्रतीत प्रविलापयन्स्वय  
सन्मात्रमानन्दघन विभावयन् ।  
समाहित सन्बहिरन्तर वा  
काल नयेथा सति कर्मबन्धे ॥ ३२१ ॥

प्रमादो ब्रह्मनिष्ठाया न कर्तव्य कदाचन ।  
प्रमादो मृत्युरित्याह भगवान्ब्रह्मण सुत ॥ ३२२ ॥

न प्रमादादनर्थोऽन्यो ज्ञानिन स्वस्वरूपत ।  
ततो मोहस्ततोऽहधीस्ततो बन्धस्ततो व्यथा ॥

विषयाभिमुख दृष्ट्वा विद्वासमपि विस्मृति ।  
विक्षेपयति धीदोषैर्योषा जारमिव प्रियम् ॥ ३२४ ॥

यथा प्रकृष्ट शैवाल क्षणमात्र न तिष्ठति ।  
आवृणोति तथा माया प्राज्ञ वापि पराङ्मुखम् ॥

लक्ष्यच्युत चेद्यदि चित्तमीष  
द्वहिर्मुख सन्निपतेत्ततस्तत ।  
प्रमादत प्रच्युतकेलिकन्दुक  
सोपानपङ्क्तौ पतितो यथा तथा ॥ ३२६ ॥

विषयेष्वाविशच्चेत सकल्पयति तद्गुणान् ।  
सम्यक्सकल्पनात्काम कामात्पुस प्रवर्तनम् ॥ ३२७ ॥

तत स्वरूपविभ्रशो विभ्रष्टस्तु पतत्यध ।  
 पतितस्य विना नाश पुनर्नारोह ईक्ष्यते ।  
 सकल्प वर्जयेत्तस्मात्सर्वानर्थस्य कारणम् ॥ ३२८ ॥

अत प्रमादान्न परोऽस्ति मृत्यु-  
 विवेकिनो ब्रह्मविद् समाधौ ।  
 समाहित सिद्धिमुपैति सम्य  
 कसमाहितात्मा भव सावधान ॥ ३२९ ॥

जीवतो यस्य कैवल्य विदेहे च स केवल ।  
 यत्किञ्चित्पश्यतो भेद भय ब्रूते यज्जु श्रुति ॥

यदा कदा वापि विपश्चिदेष  
 ब्रह्मण्यनन्तेऽप्यणुमात्रभेदम् ।  
 पश्यत्यथामुष्य भय तदेव  
 यदीक्षित भिन्नतया प्रमादात् ॥ ३३१ ॥

श्रुतिस्मृतिन्यायशतैर्निषिद्धे  
 दृश्येऽत्र य स्वात्ममतिं करोति ।  
 उपैति दु खोपरि दु खजात  
 निषिद्धकर्ता स मलिभ्लुचो यथा ॥ ३३२ ॥

सत्याभिसंधानरतो विमुक्तो  
 महत्त्वमात्मीयमुपैति नित्यम् ।  
 मिथ्याभिसंधानरतस्तु नश्ये-  
 दृष्ट तदेतद्यदचोरचोरयो ॥

यतिरसदनुसंधि बन्धहेतु विहाय  
 स्वयमयमहमस्मीत्यात्मदृष्ट्यैव तिष्ठेत् ।  
 सुखयति ननु निष्ठा ब्रह्मणि स्वानुभूत्या  
 हरति परमविद्याकार्यदु ख प्रतीतम् ॥ ३३४ ॥

बाह्यानुसंधि परिवर्धयेत्फल  
 दुर्वासनामेव ततस्ततोऽधिकाम् ।  
 ज्ञात्वा विवेकै परिहृत्य बाह्य  
 स्वात्मानुसंधि विदधीत नित्यम् ॥

बाह्ये निरुद्धे मनस प्रसन्नता  
 मन प्रसादे परमात्मदर्शनम् ।  
 तस्मिन्सुदृष्टे भवबन्धनाशो  
 बहिर्निरोध पदवी विमुक्ते ॥ ३३६ ॥

क पण्डित सन्सदसद्विवेकी  
 श्रुतिप्रमाण परमार्थदर्शी ।  
 जानन्हि कुर्यादसतोऽवलम्ब  
 स्वपातहेतो शिशुवन्मुमुक्षु ॥ ३३७ ॥

देहादिससक्तिमतो न मुक्ति  
 मुक्तस्य देहाद्यभिमत्यभाव ।  
 सुप्तस्य नो जागरण न जाग्रत  
 स्वप्नस्तयोर्भिन्नगुणाश्रयत्वात् ॥

अन्तर्बहि स्व स्थिरजङ्गमेषु  
 ज्ञानात्मनाधारतया विलोक्य ।  
 त्यक्ताखिलोपाधिरखण्डरूप  
 पूर्णात्मना य स्थित एष मुक्त ॥ ३३९ ॥

सर्वात्मना बन्धविमुक्तिहेतु  
 सर्वात्मभावान्न परोऽस्ति कश्चित् ।  
 दृश्याग्रहे सत्युपपद्यतेऽसौ  
 सर्वात्मभावोऽस्य सदात्मनिष्ठया ॥ ३४० ॥



दृश्यस्याग्रहण कथं नु घटते देहात्मना तिष्ठतो  
 बाह्यार्थानुभवप्रसक्तमनसस्तत्तत्क्रिया कुर्वत ।  
 सन्यस्ताखिलधर्मकर्मविषयैर्नित्यात्मनिष्ठापरै  
 स्तत्त्वज्ञैः करणीयमात्मनि सदानन्देच्छुभिर्यत्नत ॥

सार्वात्म्यसिद्धये भिक्षो कृतश्रवणकर्मण ।  
 समाधिं विदधात्येषा शान्तो दान्त इति श्रुति ॥

आरूढशक्तेरहमो विनाश  
 कर्तुं न शक्य सहसापि पण्डितै ।  
 ये निर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चला-  
 स्तानन्तरानन्तभवा हि वासना ॥ ३४३ ॥

अहबुद्ध्यैव मोहिन्या योजयित्वावृतेर्बलात् ।  
 विक्षेपशक्तिं पुरुषं विक्षेपयति तद्गुणैः ॥ ३४४ ॥

विक्षेपशक्तिविजयो विषमो विधातु  
 नि शेषमावरणशक्तिनिवृत्त्यभावे ।  
 दृग्दृश्ययो स्फुटपयोजलवद्विभागे  
 नश्येत्तदावरणमात्मनि च स्वभावात् ।

नि सशयेन भवति प्रतिबन्धशून्यो  
निक्षेपण न हि तदा यदि चेन्मृषार्थे ॥ ३४५ ॥

सम्यग्विवेक स्फुटबोधजन्यो  
विभज्य दृग्दृश्यपदार्थतत्त्वम् ।  
छिनत्ति मायाकृतमोहबन्ध  
यस्माद्विमुक्तस्य पुनर्न ससृति ॥ ३४६ ॥

परावरैकत्वविवेकवह्नि  
दहत्यविद्यागहन ह्यशेषम् ।  
किं स्यात्पुन ससरणस्य बीज  
मद्वैतभाव समुपेयुषोऽस्य ॥ ३४७ ॥

आवरणस्य निवृत्तिर्भवति च सम्यक्पदार्थदर्शनत ।  
मिथ्याज्ञानविनाशस्तद्विद्विक्षेपजनितदु खनिवृत्ति ॥

एतन्नितय दृष्ट सम्यग्रज्जुस्वरूपविज्ञानात् ।  
तस्माद्वस्तुसतत्त्वं ज्ञातव्य बन्धमुक्तये विदुषा ॥

अयोऽक्षियोगादिव सत्समन्वया  
न्मात्रादिरूपेण विजृम्भते धी ।

तत्कार्यमेतन्नितथ यतो मृषा  
दृष्ट भ्रमस्वप्नमनोरथेषु ॥ ३५० ॥

ततो विकारा प्रकृतेरहमुखा  
देहावसाना विषयाश्च सर्वे ।  
क्षणेऽन्यथाभाविन एष आत्मा  
नोदेति नाप्येति कदापि नान्यथा ॥ ३५१ ॥

नित्याद्वयाखण्डचिदेकरूपो  
बुद्ध्यादिसाक्षी सदसद्विलक्षण ।  
अहपदप्रत्ययलक्षितार्थ  
प्रत्यक्सदानन्दघन परात्मा ॥ ३५२ ॥

इत्थ विपश्चित्सदसद्विभज्य  
निश्चित्य तत्त्व निजबोधदृष्ट्या ।  
ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डबोध  
तेभ्यो विमुक्त स्वयमेव शाम्यति ॥

अज्ञानहृदयग्रन्थेर्नि शेषविलयस्तदा ।  
समाधिनाविकल्पेन यदाद्वैतात्मदर्शनम् ॥ ३५४ ॥

त्वमहमिदमितीय कल्पना बुद्धिदोषा-  
 त्प्रभवति परमात्मन्यद्वये निर्विशेषे ।  
 प्रविलसति समाधावस्य सर्वो विकल्पो  
 विलयनमुपगच्छेद्वस्तुतत्त्वावधृत्या ॥ ३५५ ॥

शान्तो दान्त परमुपरत क्षान्तियुक्त समार्धि  
 कुर्वन्नित्य कलयति यति स्वस्व सर्वात्मभावम् ।  
 तेनाविद्यातिभिरजनितान्साधु दग्ध्वा विकल्पा-  
 न्ब्रह्माकृत्या निवसति सुख निष्क्रियो निर्विकल्प ॥

समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्य  
 श्रोत्रादि चेत स्वमह चिदात्मनि ।  
 त एव मुक्ता भवपाशबन्धै-  
 र्नान्ये तु पारोक्ष्यकथाभिधायिन ॥ ३५७ ॥

उपाधिभेदात्स्वयमेव भिद्यते  
 चोपाध्यपोहे स्वयमेव केवल ।  
 तस्मादुपाधेर्विलयाय विद्वा-  
 न्वसेत्सदाकल्पसमाधिनिष्ठया ॥ ३५८ ॥

सति सक्तो नरो याति सद्भाव ह्येकनिष्ठया ।  
कीटको भ्रमर ध्याय-भ्रमरत्वाय कल्पते ॥

क्रियान्तरासक्तिमपास्य कीटको  
ध्यायन्यथालिं ह्यलिभावमृच्छति ।  
तथैव योगी परमात्मतत्त्व  
ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठया ॥ ३६० ॥

अतीव सूक्ष्म परमात्मतत्त्व  
न स्थूलदृष्ट्या प्रतिपत्तुमर्हति ।  
समाधिनात्यन्तसुसूक्ष्मवृत्त्या  
ज्ञातव्यमार्यैरतिशुद्धबुद्धिभि ॥

यथा सुवर्णं पुटपाकशोधित  
त्यक्त्वा मल स्वात्मगुण समृच्छति ।  
तथा मन सत्त्वरजस्तमोमल  
ध्यानेन सत्यज्य समेति तत्त्वम् ॥ ३६२ ॥

निरन्तराभ्यासवशात्तदित्थ  
पक्व मनो ब्रह्मणि लीयते यदा ।

तदा समाधि स विकल्पवर्जित  
स्वतोऽद्वयानन्दरसानुभावक ॥

समाधिनानेन समस्तवासना-  
ग्रन्थेर्विनाशोऽखिलकर्मनाश ।  
अन्तर्बहि सर्वत एव सर्वदा  
स्वरूपविस्फूर्तिरयत्नत स्यात् ॥ ३६४ ॥

श्रुते शतगुण विद्यान्मनन मननादपि ।  
निदिध्यास लक्षगुणमनन्त निर्विकल्पकम् ॥

निर्विकल्पकसमाधिना स्फुट  
ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् ।  
नान्यथा चलतया मनोगते  
प्रत्ययान्तरविमिश्रित भवेत् ॥ ३६६ ॥

अत समाधत्स्व यतेन्द्रिय सदा  
निरन्तर शान्तमना प्रतीचि ।  
विध्वंसय ध्वान्तमनाद्यविद्यया  
कृत सदेकत्वविलोकनेन ॥ ३६७ ॥

योगस्य प्रथम द्वार वाङ्निरोधोऽपरिग्रह ।  
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता ॥

एकान्तस्थितिरिन्द्रियोपरमणे हेतुर्दमश्चेतस  
सरोधे करण शमेन विलय यायादहवासना ।  
तेनानन्दरसानुभूतिरचला ब्राह्मी सदा योगिन  
स्तस्माच्चित्तनिरोध एव सतत कार्यं प्रयत्नान्मुने ॥

वाच नियच्छात्मनि त नियच्छ  
बुद्धौ धिय यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि ।  
त चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे  
विलाप्य शान्तिं परमा भजस्व ॥ ३७० ॥

देहप्राणेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिभिरुपाधिभि ।  
यैर्यैर्वृत्ते समायोगस्तत्तद्भावोऽस्य योगिन ॥

तन्निवृत्त्या मुने सम्यक्सर्वोपरमण सुखम् ।  
सदृश्यते सदानन्दरसानुभवविप्लव ॥ ३७२ ॥

अन्तस्स्यागो बहिस्स्यागो विरक्तस्यैव युज्यते ।  
त्यजत्यन्तर्बहि सङ्ग विरक्तस्तु मुमुक्षया ॥

बहिस्तु विषयै सङ्गस्तथान्तरहमादिभि ।  
विरक्त एव शक्नोति त्यक्तु ब्रह्मणि निष्ठित ॥ ३७४ ॥

वैराग्यबोधौ पुरुषस्य पक्षिव  
त्पक्षौ विजानीहि विचक्षण त्वम् ।  
विमुक्तिसौभाग्यतलाधिरोहण  
ताभ्या विना नान्यतरेण सिध्यति ॥ ३७५ ॥

अन्यन्तवैराग्यवत समाधि  
समाहितस्यैव दृढप्रबोध ।  
प्रबुद्धतत्त्वस्य हि बन्धमुक्ति-  
मुक्तात्मनो नित्यसुखानुभूति ॥ ३७६ ॥

वैराग्यान्न पर सुखस्य जनक पश्यामि वश्यात्मन  
स्तच्चेच्छुद्धतरात्मबोधसाहित स्वाराज्यसाम्राज्यधुक् ।  
एतद्वारमजस्रमुक्तियुवतेर्यस्मात्त्वमस्मात्पर  
सर्वत्रास्पृहया सदात्मनि सदा प्रज्ञा कुरु श्रेयसे ॥

आशा छिन्धि विषोपमेषु विषयेष्वेवैव मृत्यो सृति  
स्त्यक्त्वा जातिकुलाश्रमेष्वभिमर्ति मुञ्चातिदूरात्क्रिया ।



देहादावसति त्यजात्मधिपणा प्रज्ञा कुरुष्वात्मनि  
त्व द्रष्टास्यमलोऽसि निर्द्वयपर ब्रह्मासि यद्वस्तुत ॥

लक्ष्ये ब्रह्मणि मानस दृढतर सस्थाप्य बाह्येन्द्रिय  
स्वस्थाने विनिवेश्य निश्चलतनुश्चोपेक्ष्य देहस्थितिम् ।  
ब्रह्मात्मैक्यमुपेत्य तन्मयतया चाखण्डवृत्त्यानिश  
ब्रह्मानन्दरस पिबात्मनि मुदा शून्यै किमन्यैर्भ्रमै ॥

अनात्मचिन्तन त्यक्त्वा कश्मल दु खकारणम् ।  
चिन्तयात्मानमानन्दरूप यन्मुक्तिकारणम् ॥ ३८० ॥

एष स्वयज्योतिरशेषसाक्षी  
विज्ञानकोशे विलसत्यजस्रम् ।  
लक्ष्य विधायैनमसाद्विलक्षण  
मखण्डवृत्त्यात्मतयानुभावय ॥ ३८१ ॥

एतमच्छिन्नया वृत्त्या प्रत्ययान्तरशून्यया ।  
उल्लेखयन्विजानीयात्स्वस्वरूपतया स्फुटम् ॥

अत्रात्मत्व दृढीकुर्वन्नहमादिषु सत्यजन् ।  
उदासीनतया तेषु तिष्ठेद्वटपटादिवत् ॥

विशुद्धमन्त करण स्वरूपे  
 निवेश्य साक्षिण्यवबोधमात्रे ।  
 शनै शनैर्निश्चलतामुपानय  
 •पूर्णत्वमेवानुविलोकयेत्तत ॥ ३८४ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनोहमादिभि  
 स्वाज्ञानक्लृप्तैरखिलैरुपाधिभि ।  
 विमुक्तमात्मानमखण्डरूप  
 पूर्ण महाकाशमिवावलोकयेत् ॥ ३८५ ॥

घटकलशकुसूलसूचिमुदयै  
 र्गगनमुपाधिशतैर्विमुक्तमेकम् ।  
 भवति न विविध तथैव शुद्ध  
 परमहमादिविमुक्तमेकमेव ॥ ३८६ ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता मृषामात्रा उपाधय ।  
 तत पूर्ण स्वमात्मान पश्येदेकात्मना स्थितम् ॥

यत्र भ्रान्त्या कल्पित यद्विवेके  
 तत्तन्मात्र नेव तस्माद्विभिन्नम्

भ्रान्तेर्नाशे भ्रान्तिदृष्टाहितत्त्व

रज्जुस्तद्वद्विश्वमात्मस्वरूपम् ॥ ३८८ ॥

स्वय ब्रह्मा स्वय विष्णु स्वयमिन्द्र स्वय शिव ।

स्वय विश्वमिद सर्व स्वस्मादन्यन्न किंचन ॥ ३८९ ॥

अन्त स्वय चापि बहि स्वय च

स्वय पुरस्तात्स्वयमेव पश्चात् ।

स्वय ह्यवाच्या स्वयमप्युदीच्या

तथोपरिष्ठात्स्वयमप्यधस्तात् ॥

तरङ्गफेनभ्रमबुद्बुदादि सर्व स्वरूपेण जल यथा तथा ।

चिदेव देहाद्यहमन्तमेतत्सर्व चिदेवैकरस विशुद्धम् ॥

सदेवेद सर्व जगदवगत वाङ्मनसयो

सतोऽन्यज्ञास्त्येव प्रकृतिपरसीद्धि स्थितवत ।

पृथकिं मृत्स्त्राया कलशघटकुम्भाद्यवगत

वदत्येष भ्रान्तस्त्वमहमिति मायामदिरया ॥ ३९२ ॥

क्रियासमभिहारेण यत्र नान्यदिति श्रुति ।

ब्रवीति द्वैतराहित्य मिथ्याध्यासनिवृत्तये ॥

आकाशवन्निर्मलनिर्विकल्प

नि सीमनिस्पन्दननिर्विकारम् ।

अन्तर्बहि शून्यमनन्यमद्वय

स्वय पर ब्रह्म किमस्ति बोध्यम् ॥ ३९४ ॥

वक्तव्य किमु विद्यतेऽत्र बहुधा ब्रह्मैव जीव स्वय

ब्रह्मेतज्जगदापराणु सकल ब्रह्माद्वितीय श्रुते ।

ब्रह्मैवाहमिति प्रबुद्धमतय सत्यक्तबाह्या स्फुट

ब्रह्मीभूय वसन्ति सततचिदानन्दात्मनैव ध्रुवम् ॥

जहि मलमयकोशेऽहधियोत्थापिताशा

प्रसभमनिलकल्पे लिङ्गदेहेऽपि पश्चात् ।

निगमगदितकीर्तिं नित्यमानन्दमूर्तिं

स्वयमिति परिचीय ब्रह्मरूपेण तिष्ठ ॥ ३९६ ॥

शवाकार यावद्भजति मनुजस्तावदशुचि

परेभ्य स्यात्क्लेशो जननमरणव्याधिनिरया ।

यदात्मान शुद्ध कलयति शिवाकारमचल

तदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि ॥

स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासत ।  
स्वयमेव पर ब्रह्म पूर्णमद्वयमक्रियम् ॥ ३९८ ॥

समाहिताया सति चित्तवृत्तौ  
परात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे ।  
न दृश्यते कश्चिदय विकल्प  
प्रजल्पमात्र परिशिष्यते तत ॥ ३९९ ॥

असत्कल्पो विकल्पोऽय विश्वमित्येकवस्तुनि ।  
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुत ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशून्यैकवस्तुनि ।  
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुत ॥ ४०१ ॥

कल्पार्णव इवात्यन्तपरिपूर्णैकवस्तुनि ।  
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुत ॥ ४०२ ॥

तेजसीव तमो यत्र विलीन भ्रान्तिकारणम् ।  
अद्वितीये परे तत्त्वे निर्विशेषे भिदा कुत ॥

एकात्मके परे तत्त्वे भेदवार्ता कथ भवेत्  
सुषुप्तौ सुखमात्राया भेद केनावलोकित ॥ ४०४ ॥

न ह्यस्ति विश्व परतस्त्वबोध  
 त्सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे ।  
 कालत्रये नाप्यहिरीक्षितो गुणे  
 न ह्यम्बुबिन्दुर्मृगतृष्णिकायाम् ॥ ४०० ॥

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैत परमार्थत ।  
 इति ब्रूते श्रुति साक्षात्सुषुप्तावनुभूयते ॥ ४०६ ॥

अनन्यत्वमधिष्ठानादारोप्यस्य निरीक्षितम् ।  
 पण्डितै रज्जुसर्पादौ विकल्पो भ्रान्तिजीवन ॥

चित्तमूलो विकल्पोऽयं चित्ताभावे न कश्चन ।  
 अतश्चित्त समाधेहि प्रत्यग्रूपे परात्मनि ॥ ४०८ ॥

किमपि सततबोध केवलानन्दरूप  
 निरुपममतिवेल नित्यमुक्त निरीहम् ।  
 निरवधि गगनाभ निष्कल निर्विकल्प  
 हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्म पूर्णं समाधौ ॥ ४०९ ॥

प्रकृतिविकृतिशून्य भावनातीतभाव  
 समरसमसमान मानसबन्धदूरम् ।

निगमवचनसिद्ध नित्यमस्मत्प्रसिद्ध  
हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्म पूर्ण समाधौ ॥ ४१० ॥

अजरममरमस्ताभासवस्तुस्वरूप  
स्तिमितसलिलराशिप्रख्यमाख्याविहीनम् ।  
शमितगुणाविकार शाश्वत शान्तमेक  
हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्म पूर्ण समाधौ ॥ ४११ ॥

समाहितान्त करण स्वरूपे  
विलोकयात्मानमखण्डवैभवम् ।  
विच्छिन्धि बन्ध भवगन्धगन्धिल  
यत्नेन पुस्त्व सफलीकुरुष्व ॥ ४१२ ॥

सर्वोपाधिविनिर्मुक्त सच्चिदानन्दमद्वयम् ।  
भावयात्मानमात्मस्थ न भूय कल्पसेऽध्वने ॥

छायेव पुस परिदृश्यमान-  
माभासरूपेण फलानुभूत्या ।  
शरीरमाराच्छववन्निरस्त  
पुनर्न सद्यत्त इद महात्मा ॥

सततविमलबोधानन्दरूप समेत्य  
 त्यज जडमलरूपोपाधिमेत सुदूरे ।  
 अथ पुनरपि नैव स्मर्यता वान्तवस्तु  
 स्मरणविषयभूत कल्पते कुत्सनाय ॥

समूलमेतत्परिदह्य वह्नौ  
 सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे ।  
 तत स्वय नित्यविशुद्धबोधा  
 नन्दात्मना तिष्ठति विद्वरिष्ठ ॥ ४१६ ॥

प्रारब्धसूत्रग्रथित शरीर  
 प्रयातु वा तिष्ठतु गोरिव स्रक् ।  
 न तत्पुन पश्यति तत्त्ववेत्ता  
 नन्दात्मनि ब्रह्मणि लीनवृत्ति ॥ ४१७ ॥

अखण्डानन्दमात्मान विज्ञाय स्वस्वरूपत ।  
 किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देह पुष्पाति तत्त्ववित् ॥

ससिद्धस्य फल त्वेतज्जीवन्मुक्तस्य योगिन ।  
 बहिरन्त सदानन्दरसास्वादनमात्मनि ॥ ४१९ ॥



वैराग्यस्य फल बोधो बोधस्योपरति फलम् ।  
स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषैवोपरते फलम् ॥ ४२० ॥

यद्युत्तरोत्तराभाव पूर्वपूर्व तु निष्फलम् ।  
निवृत्ति परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपम स्वत ॥

दृष्टदु खेष्वनुव्वेगो विद्याया प्रस्तुत फलम् ।  
यत्कृत भ्रान्तिवैलाया नानाकर्म जुगुप्सितम् ।  
पश्चान्नरो विवेकेन तत्कथ कर्तुमर्हति ॥ ४२२ ॥

विद्याफल स्यादसतो निवृत्ति  
प्रवृत्तिरज्ञानफल तदीक्षितम् ।  
नज्ज्ञाज्ञयोर्यन्मृगतृष्णिकादौ  
नो चेद्विदो दृष्टफल किमस्मात् ॥ ४२३ ॥

अज्ञानहृदयग्रन्थेर्विनाशो यद्यशेषत ।  
अनिच्छोर्विषय किं तु प्रवृत्ते कारण स्वत ॥

वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य तदावधि ।  
अहभावोदयाभावो बोधस्य परमावधि ।  
लोनवृत्तेरनुत्पत्तिर्मर्यादोपरतेस्तु सा ॥

ब्रह्माकारतया सदा स्थिततया निर्मुक्तबाह्यार्थधी  
 रन्यावेदितभोग्यभोगकलनो निद्रालुवद्बालवत् ।  
 स्वप्रालोकितलोकवज्जगदिद पश्यन्कच्चिल्लब्धधी  
 रास्ते कश्चिदनन्तपुण्यफलभुग्धन्य स मान्यो भुवि ॥

स्थितप्रज्ञो यतिरयं य सदानन्दमश्नुते ।  
 ब्रह्मण्येव विलीनात्मा निर्विकारो विनिष्क्रिय ॥

ब्रह्मात्मनो शोधितयोरेकभावावगाहिनी ।  
 निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्ति प्रज्ञेति कथ्यते ।  
 सा सर्वदा भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते ॥

यस्य स्थिता भवेत्प्रज्ञा यस्यानन्दो निरन्तर ।  
 प्रपञ्चो विस्मृतप्राय स जीवन्मुक्त इष्यते ॥

लीनधीरपि जागर्ति यो जाग्रद्धर्मवर्जित ।  
 बोधो निर्वासनो यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४३० ॥

शान्तससारकलन कलावानपि निष्कल ।  
 य सच्चित्तोऽपि निश्चित्त स जीवन्मुक्त इष्यते ॥

वर्तमानेऽपि देहेऽस्मिच्छायावदनुवर्तिनि ।  
 अहताममताभावो जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४३२ ॥

अतीताननुसधान भविष्यदविचारणम् ।

औदासीन्यमपि प्राप्ते जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥

गुणदोषविशिष्टेऽस्मिन्स्वभावेन विलक्षणे ।

सर्वत्र समदर्शित्व जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४३४ ॥

इष्टानिष्टार्थसंप्राप्तौ समदर्शितयात्मनि ।

उभयत्राविकारित्व जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥

ब्रह्मानन्दरसास्वादासक्तचित्ततया यते ।

अन्तर्बहिरविज्ञान जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४३६ ॥

देहेन्द्रियादौ कर्तव्ये ममाहंभाववर्जित ।

औदासीन्येन यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४३७ ॥

विज्ञात आत्मनो यस्य ब्रह्मभाव श्रुतेर्बलात् ।

भवबन्धविनिर्मुक्त स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४३८ ॥

देहेन्द्रियेष्वहभाव इदभावस्तदन्यके ।

यस्य नो भवत कापि स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४३९ ॥

न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेद कदापि ब्रह्मसर्गयो ।

प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४४० ॥

साधुभि पूज्यमानेऽस्मिन्पीड्यमानेऽपि दुर्जनै ।  
समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४४१ ॥

यत्र प्रविष्टा विषया परेरिता  
नदीप्रवाहा इव वारिराशौ ।  
लिनन्ति सन्मात्रतया न विक्रिया  
मुत्पादयन्त्येष यतिर्विमुक्त ॥ ४४२ ॥

विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य यथापूर्वं न ससृति ।  
अस्ति चेन्न स विज्ञातब्रह्मभावो बहिर्मुख ॥  
प्राचीनवासनावेगादसौ ससरतीति चेत् ।  
न सदेकत्वविज्ञानान्मन्दीभवति वासना ॥ ४४४ ॥

अत्यन्तकामुकस्यापि वृत्ति कुण्ठति मातरि ।  
तथैव ब्रह्मणि ज्ञाते पूर्णानन्दे मनीषिण ॥ ४४५ ॥

निदिध्यासनशीलस्य बाह्यप्रत्यय ईक्ष्यते ।  
ब्रवीति श्रुतिरेतस्य प्रारब्ध फलदर्शनात् ॥ ४४६ ॥

सुखाद्यनुभवो यावत्तावत्प्रारब्धमिष्यते ।  
फलोदय क्रियापूर्वो निष्क्रियो न हि कुत्रचित् ॥

अह ब्रह्मेति विज्ञानात्कल्पकोटिशतार्जितम् ।  
सच्चिन विलय याति प्रबोधात्स्वप्नकर्मवत् ॥

यत्कृत स्वप्नवेलाया पुण्य वा पापमुल्बणम् ।  
 सुप्तोत्थितस्य किं तत्स्यात्स्वर्गाय नरकाय वा ॥  
 स्वमसङ्गमुदासीन परिज्ञाय नभो यथा ।  
 न श्लिष्यते यति किञ्चित्कदाचिद्भाविकर्मभि ॥  
 न नभो घटयोगेन सुरागन्धेन लिप्यते ।  
 नथात्मोपाधियोगेन तद्धर्मैर्नैव लिप्यते ॥ ४५१ ॥  
 ज्ञानोदयात्पुरारब्ध कर्म ज्ञानान्न नश्यति ।  
 अदत्त्वा स्वफल लक्ष्यमुद्दिश्योत्सृष्टबाणवत् ॥  
 व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्तो बाण पश्चात्तु गोमतौ ।  
 न तिष्ठति च्छिनत्त्येव लक्ष्य वेगेन निर्भरम् ॥ ४५३ ॥  
 प्रारब्ध बलवत्तर खलु विदा भोगेन तस्य क्षय  
 सम्यग्ज्ञानहुताशनेन विलय प्राक्सञ्चितागामिनाम् ।  
 ब्रह्मात्मैक्यमवेक्ष्य तन्मयतया ये सर्वदा सञ्चिता-  
 स्तेषा तन्नितय न हि क्वचिदपि ब्रह्मैव ते निर्गुणम् ॥  
 उपाधितादात्म्यविहीनकेवल-  
 ब्रह्मात्मनैवात्मनि तिष्ठतो मुने ।  
 प्रारब्धसद्भावकथा न युक्ता  
 स्वप्रार्थसबन्धकथेव जाग्रत ॥ ४५५ ॥

न हि प्रबुद्ध प्रतिभासदेहे

देहोपयोगिन्यपि च प्रपञ्चे ।

करोत्यहता ममतामिदता

किं तु स्वय तिष्ठति जागरेण ॥ ४५६ ॥

न तस्य मिथ्यार्थसमर्थनेच्छा

न सग्रहस्तज्जगतोऽपि दृष्ट ।

तत्रानुवृत्तिर्यदि चेन्मृषार्थे

न निद्रया मुक्त इतीष्यते ध्रुवम् ॥ ४५७ ॥

तद्वत्परे ब्रह्मणि वर्तमान

सदात्मना तिष्ठति नान्यदीक्षते ।

स्मृतिर्यथा स्वप्नाविलोकितार्थे

तथा विद प्राशनमोचनादौ ॥ ४५८ ॥

कर्मणा निर्मितो देह प्रारब्ध तस्य कल्प्यताम् ।

नानादेरात्मनो युक्त नैवात्मा कर्मनिर्मित ॥ ४५९ ॥

अजो नित्य इति ब्रूते श्रुतिरेषा त्वमोघवाक् ।

तदात्मना तिष्ठतोऽस्य कुत प्रारब्धकल्पना ॥

प्रारब्ध सिध्यति तदा यदा देहात्मना स्थिति ।

देहात्मभावो नैवेष्ट प्रारब्ध त्यज्यतामत ।

शरीरस्यापि प्रारब्धकल्पना भ्रान्तिरेव हि ॥

अध्यस्तस्य कुत सत्त्वमसत्त्वस्य कुतो जनि ।  
अजातस्य कुतो नाश प्रारब्धमसत कुत ॥ ४६२ ॥

ज्ञानेनाज्ञानकार्यस्य समूलस्य लयो यदि ।  
तिष्ठत्यय कथं देह इति शङ्कावतो जडान् ।  
समाधातु बाह्यदृष्ट्या प्रारब्धं वदति श्रुति ॥

न तु देहादिसत्यत्वबोधनाय विपश्चिताम् ।  
यत श्रुतेरभिप्राय परमार्थैकगोचर ॥

परिपूर्णमनाद्यन्तमप्रमेयमविक्रियम् ।  
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४६५ ॥

सद्ब्रह्म चिद्ब्रह्म नित्यमानन्दघनमक्रियम् ।  
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४६६ ॥

प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतोमुखम् ।  
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४६७ ॥

अहेयमनुपादेयमनाधेयमनाश्रयम् ।  
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४६८ ॥

निर्गुणं निष्कलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।  
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४६९ ॥

अनिरूप्यस्वरूप यन्मनोवाचामगोचरम् ।  
एकमेवाद्वय ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४७० ॥

सत्समृद्ध स्वत सिद्ध शुद्ध बुद्धमनीदृशम् ।  
एकमेवाद्वय ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥

निरस्तरागा निरपास्तभोगा  
शान्ता सुदान्ता यतयो महान्त ।  
विज्ञाय तत्त्व परमे तदन्ते  
प्राप्ता परा निर्वृतिमात्मयोगात् ॥ ४७२ ॥

भवानपीद परतत्त्वमात्मन  
स्वरूपमानन्दघन निचाय्य ।  
विधूय मोह स्वमन प्रकल्पित  
मुक्त कृतार्थो भवतु प्रबुद्ध ॥ ४७३ ॥

समाधिना साधु विनिश्चलात्मना  
पश्यात्मतत्त्व स्फुटबोधचक्षुषा ।  
नि सशय सम्यगवेक्षितश्चे-  
च्छ्रुत पदार्थो न पुनर्विकल्पते ॥ ४७४ ॥



स्वस्याविद्याबन्धसबन्धमोक्षा

त्सत्यज्ञानानन्दरूपात्मलब्धौ ।

शास्त्र युक्तिर्देशिकोक्ति प्रमाण

चान्त सिद्धा स्वानुभूति प्रमाणम् ॥ ४७२ ॥

बन्धो मोक्षश्च तृप्तिश्च चिन्तारोग्यश्लुघ्रादय ।

स्वेनैव वेद्या यज्ज्ञान परेषामानुमानिकम् ॥

तटस्थिता बोधयन्ति गुरव श्रुतयो यथा ।

प्रज्ञयैव तरेद्विद्वानीश्वरानुगृहीतया ॥ ४७७ ॥

स्वानुभूत्या स्वय ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डितम् ।

ससिद्ध सुसुख तिष्ठेन्निर्विकल्पात्मनात्मनि ॥

वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा

ब्रह्मैव जीव सकल जगच्च ।

अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो

ब्रह्माद्वितीय श्रुतय प्रमाणम् ॥ ४७९ ॥

इति गुरुवचनाच्छ्रुतिप्रमाणा-

त्परमवगम्य सतत्त्वमात्मयुक्त्या ।

प्रशमितकरण समाहितात्मा

क्वचिदचलाकृतिरात्मनिष्ठितोऽभूत् ॥

कचित्काल समाधाय परे ब्रह्मणि मानसम् ।  
व्युत्थाय परमानन्दादिद वचनमब्रवीन् ॥

बुद्धिर्विनष्टा गलिता प्रवृत्ति  
ब्रह्मात्मनोरेकतयाधिगत्या ।  
इद न जानेऽप्यनिद न जाने  
किं वा कियद्वा सुखमस्य पारम् ॥ ४८२ ॥

वाचा वक्तुमशक्यमेव मनसा मन्तु न वास्वाद्यने  
स्वानन्दामृतपूरपूरितपरब्रह्माम्बुधेर्वैभवम् ।  
अम्भोराशिविशीर्णवार्षिकशिलाभाव भजन्मे मनो  
यस्याशाशलवे विलीनमधुनानन्दात्मना निर्वृतम् ॥

क गत केन वानोत कुत्र लीनमिद जगत् ।  
अधुनैव मया दृष्ट नास्ति किं महदद्भुतम् ॥ ४८२ ॥

किं हेय किमुपादेय किमन्यर्तिक विलक्षणम् ।  
अखण्डानन्दपीयूषपूर्णे ब्रह्ममहार्णवे ॥ ४८६ ॥

न किञ्चिदत्र पश्यामि न शृणोमि न वेद्म्यहम् ।  
स्वात्मनैव सदानन्दरूपेणास्मि विलक्षण ॥ ४८७ ॥

नमो नमस्ते गुरवे महात्मने

विमुक्तसङ्गाय सदुत्तमाय ।

नित्याद्वयानन्दरसस्वरूपिणे

भूम्ने सदापारदयाम्बुधाम्ने ॥ ४८७ ॥

यत्कटाक्षशशिसान्द्रचन्द्रिका-

पातधूतभवतापजश्रम ।

प्राप्तवानहमखण्डवैभवा-

नन्दमात्मपदमक्षय क्षणात् ॥ ४८८ ॥

धन्योऽह कृतकृत्योऽह विमुक्तोऽह भवग्रहात् ।

नित्यानन्दस्वरूपोऽह पूर्णोऽह त्वदनुग्रहात् ॥ ४८९ ॥

असङ्गोऽहमनङ्गोऽहमलङ्गोऽहमभङ्गुर ।

प्रशान्तोऽहमनन्तोऽहमतान्तोऽह चिरतन ॥ ४९० ॥

अकर्ताहमभोक्ताहमविकारोऽहमक्रिय ।

शुद्धबोधस्वरूपोऽह केवलोऽह सदाशिव ॥ ४९१ ॥

द्रष्टु श्रोतुर्वक्तु कर्तुर्भोक्तुर्विभिन्न एवाहम् ।

नित्यनिरन्तरनिष्क्रियनि सीमासङ्गपूर्णबोधात्मा ॥

नाहमिद नाहमदोऽप्युभयोरवभासक पर शुद्धम् ।

वाङ्मन्यन्तरशून्य पूर्णं ब्रह्माद्वितीयमेवाहम् ॥ ४९३ ॥

निरुपममनादितस्व त्वमहमिदमद इति कल्पनादुरम् ।  
नित्यानन्देकरस सत्य ब्रह्माद्वितीयमवाहम् ॥ ४९४ ॥

नारायणोऽह नरकान्तकोऽह  
पुरान्तकोऽह पुरुषाऽहमीश ।  
अखण्डबोधोऽहमशेषसाक्षी  
निरीश्वरोऽह निरह च निर्मम ॥ ४९५ ॥

सर्वेषु भूतेष्वहमेव सस्थितो  
ज्ञात्वात्मनान्तर्बहिराश्रय सन् ।  
भोक्ता च भोग्य स्वयमेव सर्व  
तद्यत्पृथग्दृष्टमिदतया पुरा ॥ ४९६ ॥

मय्यखण्डसुखाम्भोधौ बहुधा विश्ववीचय ।  
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामास्तविभ्रमात् ॥ ४९७ ॥

स्थूलादिभावा मयि कल्पिता भ्रमा  
दारोपितानुस्फुरणेन लोकै ।  
काले यथा कल्पकवत्सराय-  
नर्त्वाद्यो निष्कलमिर्विकल्पे ॥ ४९८ ॥

आरोपित नाश्रयदूषक भवे  
 त्कदापि मूढैर्मतिदोषदूषितै ।  
 नार्द्रीकरोत्यूषरभूमिभाग  
 मरीचिकावारिमहाप्रवाह ॥ ४९९ ॥

आकाशवत्कल्पविदूरगोऽह  
 मादित्यवद्भास्यविलक्षणोऽहम् ।  
 अहार्यवन्नित्यविनिश्चलोऽह  
 मम्भोधिवत्पारविवर्जितोऽहम् ॥ ५०० ॥

न मे देहेन सबन्धो मेघेनेव विहायस ।  
 अत कुतो मे तद्धर्मा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तय ॥ ५०१ ॥

उपाधिरायाति स एव गच्छति  
 स एव कर्माणि करोति भुङ्क्ते ।  
 स एव जीवन्म्रियते सदाह  
 कुलाद्रिवन्निश्चल एव सस्थित ॥ ५०२ ॥

न मे प्रवृत्तिर्न च मे निवृत्ति  
 सदैकरूपस्य निरशकस्य ।  
 ऐकात्मको यो निबिडो निरन्तरो  
 व्योमेव पूर्ण स कथं नु चेष्टते ॥ ५०३ ॥

पुण्यानि पापानि निरिन्द्रियस्य  
 निश्चेतसो निर्विकृतेर्निराकृते ।  
 कुतो ममाखण्डसुखानुभूते  
 ब्रूते ह्यनन्वागतमित्यपि श्रुति ॥ ५०३ ॥

छायया स्पृष्टमुष्ण वा शीत वा सुष्ठु दुष्ठु वा ।  
 न स्पृशत्येव यत्किञ्चित्पुरुष तद्विलक्षणम् ॥

न साक्षिण साध्यधर्मा सस्पृशन्ति विलक्षणम् ।  
 अविकारमुदासीन गृहधर्मा प्रदीपवन् ।  
 देहेन्द्रियमनोधर्मा नैवात्मान स्पृशन्त्यहो ॥ ५०६ ॥

ग्वेर्यथा कर्मणि साक्षिभावो  
 वह्नैर्यथा वायसि दाहकत्वम् ।  
 रज्जोर्यथारोपितवस्तुसङ्ग  
 स्तथैव कूटस्थन्निदात्मनो मे ॥ ५०७ ॥

कर्तापि वा कारयितापि नाह  
 भोक्तापि वा भोजयितापि नाहम् ।  
 द्रष्टापि वा दर्शयितापि नाह  
 सोऽह स्वयज्योतिरनीदृगात्मा ॥ ५०८ ॥

चलत्युपाधौ प्रतिबिम्बलौल्य

मौपाधिक मूढधियो नयन्ति ।

स्वबिम्बभूत रविवद्विनिष्क्रिय

कर्तास्मि भोक्तास्मि हतोऽस्मि हेति ॥ ५०९ ॥

जले वापि स्थले वापि लुठत्वेष जडात्मक ।

नाह विलिप्ये तद्धर्मैर्घटधर्मैर्नभो यथा ॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वखलत्वमत्तता-

जडत्वबद्धत्वविमुक्ततादय ।

बुद्धेर्विकल्पा न तु सन्ति वस्तुत

स्वस्मिन्परे ब्रह्मणि केवलेऽद्वये ॥

सन्तु विकारा प्रकृतेर्दशधा शतधा सहस्रधा वापि ।

तै किं मेऽसङ्गचित्तेर्न ह्यम्बुदडम्बरोऽम्बर स्पृशति ॥

अव्यक्तादि स्थूलपर्यन्तमेत

द्विष्व यत्राभासमात्र प्रतीतम् ।

ज्योमप्ररय सूक्ष्ममाद्यन्तहीन

ब्रह्माद्वैत यत्तदेवाहमस्मि ॥ ५१३ ॥

सर्वाधार सर्ववस्तुप्रकाश

सर्वाकार सर्वग सर्वशून्यम् ।

नित्य शुद्ध निश्चल निर्विकल्प  
ब्रह्माद्वैत यत्तदेवाहमस्मि ॥ ५१४ ॥

यस्मिन्नस्ताशेषमायाविशेष  
प्रत्यग्रूप प्रत्ययागम्यमानम् ।  
सत्यज्ञानानन्दमानन्दरूप  
ब्रह्माद्वैत यत्तदेवाहमस्मि ॥ ५१५ ॥

निष्क्रियोऽस्म्यविकारोऽस्मि  
निष्कलोऽस्मि निराकृति ।  
निर्विकल्पोऽस्मि नित्योऽस्मि  
निरालम्बोऽस्मि निर्द्वय ॥ ५१६ ॥

सर्वात्मकोऽह सर्वोऽह सर्वातीतोऽहमद्वय ।  
केवलाखण्डबोधोऽहमानन्दोऽह निरन्तर ॥ ५१७ ॥

स्वाराज्यसाम्राज्यविभूतिरेषा  
भवत्कृपाश्रीमहितप्रसादात् ।  
प्राप्ता मया श्रीगुरवे महात्मने  
नमो नमस्तेऽस्तु पुनर्नमोऽस्तु ॥ ५१८ ॥

महास्वप्ने मायाकृतजनिजरामृत्युगहने  
भ्रमन्त क्लिश्यन्त बहुलतरतापैरनुकल्म् ।



अहकारव्याघ्रव्यथितमिममत्यन्तकृपया

प्रबोध्य प्रस्वापात्परमवितवान्मामसि गुरो ॥ ५१९ ॥

नमस्तस्मै सदेकस्मै नमश्चिन्महसे मुहु ।

यदेतद्विश्वरूपेण राजते गुरुराज ते ॥ ५२० ॥

इति नतमवलोक्य शिष्यवर्य

समधिगतात्मसुख प्रबुद्धतत्त्वम् ।

प्रमुदितहृदय स देशिकेन्द्र

पुनरिदमाह वच पर महात्मा ॥ ५२१ ॥

ब्रह्मप्रत्ययसततिर्जगदतो ब्रह्मैव सत्सर्वत

पश्याध्यात्मदशा प्रशान्तमनसा सर्वास्ववस्थास्वपि ।

रूपादन्यदवेक्षितु किमभितश्चक्षुष्मता विद्यते

नद्वद्ब्रह्मविद सत किमपर बुद्धेर्विहारास्पदम् ॥ ५२२ ॥

कस्ता परानन्दरसानुभूति-

मुत्सृज्य शून्येषु रमेत विद्वान् ।

चन्द्रे महाहादिनि दीप्यमाने

चित्तेन्दुमालोकयितु क इच्छेत् ॥ ५२३ ॥

असत्पदार्थानुभवे न किञ्चि

न्न ह्यस्ति तृप्तिर्न सु दुःखहानि ।

{ परिग्रहण सं० . 10376 }  
प्रस्थालय

तद्वयानन्दरसानुभूत्या

तुप्त सुख तिष्ठ सदात्मनिष्ठया ॥ ५२४ ॥

स्वमेव सर्वत पश्यन्मन्यमान स्वमद्वयम् ।

स्वानन्दमनुभुञ्जान काल नय महामते ॥ ५२५ ॥

अखण्डबोधात्मनि निर्विकल्पे

विकल्पन व्योम्नि पुर प्रकल्पनम् ।

तद्वयानन्दमयात्मना सदा

शान्ति परामेत्य भजस्व मौनम् ॥ ५२६ ॥

तूष्णीमवस्था परमोपशान्ति

बुद्धेरसत्कल्पविकल्पहेतो ।

ब्रह्मात्मना ब्रह्मविदो महात्मनो

यत्राद्वयानन्दसुख निरन्तरम् ॥ ५२७ ॥

नास्ति निर्वासनान्मौनात्पर सुखकृदुत्तमम् ।

विज्ञातात्मस्वरूपस्य स्वानन्दरसपायिन ॥ ५२८ ॥

गच्छस्तिष्ठन्नुपशिक्षाशयानो वान्यथापि वा ।

यथेच्छया वसेद्विद्वानात्माराम सदा मुनि ॥ ५२९ ॥

न देशकालासनदिग्यमादि

लक्ष्याद्यपेक्षा प्रतिबद्धवृत्ते ।

ससिद्धतत्त्वस्य महात्मनोऽस्ति

स्ववेदने का नियमाद्यवस्था ॥ ५३० ॥

घटोऽयमिति विज्ञातु नियम कोऽन्वपेक्ष्यते ।

विना प्रमाणसुष्ठुत्व यस्मिन्सति पदार्थधी ॥ ५३१ ॥

अयमात्मा नित्यसिद्ध प्रमाणे सति भासते ।

न देश नापि वा काल न शुद्धि वाप्यपेक्षते ॥

देवदत्तोऽहमित्येतद्विज्ञान निरपेक्षकम् ।

तद्वद्ब्रह्मविदोऽप्यस्य ब्रह्माहमिति वेदनम् ॥ ५३३ ॥

मानुनेव जगत्सर्व भासते यस्य तेजसा ।

अनात्मकमसत्तुच्छ किं नु तस्यावभासकम् ॥ ५३४ ॥

वेदशास्त्रपुराणानि भूतानि सकलान्यपि ।

येनार्थवन्ति त किं नु विज्ञातार प्रकाशयेत् ॥

एष स्वयज्योतिरनन्तशक्ति

रात्माप्रमेय सकलानुभूति ।

यमेव विज्ञाय विमुक्तबन्धो

जयत्यय ब्रह्मविदुत्तमोत्तम ॥ ५३६ ॥

न खिद्यते नो विषयै प्रमोदते

न सज्जते नापि विरज्यते च ।

म्वस्मिन्सदा क्रीडति नन्दति स्वय

निरन्तरानन्दरसेन तृप्त ॥ ५३७ ॥

श्रुधा देहव्यथा त्यक्त्वा बाल क्रीडति वस्तुनि ।

तथैव विद्वान्प्रमते निर्ममो निरह सुखी ॥ ५३८ ॥

चिन्ताशून्यमदैन्यमैक्षमशन पान सरिद्वारिषु  
स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशा स्थितिरभीर्निद्रा इमशाने वने ।

वस्त्र क्षालनशोषणादिरहित दिग्वास्तु शय्या मही  
सञ्चारो निगमान्तवीथिषु विदा क्रीडा परे ब्रह्मणि ॥

विमानमालम्ब्य शरीरमेतत्

भुनक्त्यशेषान्विषयानुपस्थितान् ।

परेच्छया बालवदात्मवेत्ता

योऽव्यक्तलिङ्गोऽननुषक्तबाह्य ॥ ५४० ॥

दिगम्बरो वापि च साम्बरो वा

त्वगम्बरो वापि चिदम्बरस्थ ।

उन्मत्तवद्वापि च बालवद्वा

पिशाचवद्वापि चरत्यवन्याम् ॥ ५४१ ॥

कामाक्षी कामरूपी सञ्चरत्येकचरो मुनि ।

स्वात्मनैव सदा तुष्ट स्वय सर्वात्मना स्थित ॥ ५४२ ॥

क्वचिन्मूढो विद्वान्क्वचिदपि महाराजविभव  
 क्वचिद्भ्रान्त सौम्य क्वचिदजगराचारकलित ।  
 क्वचित्पात्रीभूत क्वचिदवमत काप्यविदित-  
 श्ररत्येव प्राज्ञ सततपरमानन्दसुखित ॥ ५४३ ॥

निध्नोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महाबल ।  
 नित्यतृप्तोऽप्यभुञ्जानोऽप्यसम समदर्शन ॥

अपि कुर्वन्नकुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि ।  
 शरीर्यप्यशरीर्येष परिच्छिन्नोऽपि सर्वग ॥ ५४५ ॥

अशरीर सदा सन्तमिम ब्रह्मविद क्वचिन् ।  
 प्रियाप्रिये न स्पृशतस्तथैव च शुभाशुभे ॥ ५४६ ॥

स्थूलादिसबन्धवतोऽभिमानिन  
 सुख च दुःख च शुभाशुभे च ।  
 विध्वस्तबन्धस्य सदात्मनो मुने  
 कुत शुभ वाप्यशुभ फल वा ॥ ५४७ ॥

नमसा प्रस्तवज्ञानादप्रस्तोऽपि रविर्जनै ।  
 अस्त इत्युच्यते भ्रान्त्या ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्षणम् ॥  
 नद्वहेहादिबन्धेभ्यो विमुक्त ब्रह्मवित्तमम् ।  
 पश्यन्ति देहिवन्मूढा शरीराभासदर्शनात् ॥ ५४९ ॥

अहिनिल्वयनीवाय मुक्तदेहस्तु तिष्ठति ।  
इतस्ततश्चाल्यमानो यत्किञ्चित्प्राणवायुना ॥ ५५० ॥

स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नतस्थलम् ।  
दैवेन नीयते देहो यथाकालोपभुक्तिषु ॥

प्रारब्धकर्मपरिकल्पितवासनाभि  
ससारिवच्चरति भुक्तिषु मुक्तदेह ।  
सिद्ध स्वय वसति साक्षिवदत्र तूष्णी  
चक्रस्य मूलमिव कल्पविकल्पशून्य ॥

नैवेन्द्रियाणि विषयेषु नियुङ्क्त एष  
नैवापयुङ्क्त उपदर्शनलक्षणस्थ ।  
नैव क्रियाफलमपीषदपेक्षते स  
स्वानन्दसान्द्ररसपानसुमत्तचित्त ॥

लक्ष्यालक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना ।  
शिव एव स्वय साक्षादय ब्रह्मविदुत्तम ॥

जीवन्नेव सदा मुक्त कृतार्थो ब्रह्मवित्तम ।  
उपाधिनाशाद्ब्रह्मैव सद्ब्रह्माप्येति निर्द्वयम् ॥ ५५५ ॥

शैलूषो वेषसद्भावाभावयोश्च यथा पुमान् ।  
तथैव ब्रह्मविच्छ्रेष्ठ सदा ब्रह्मैव नापर ॥ ५५६ ॥

यत्र कापि विशीर्णं पर्णमिव तरोर्वपु पतनात् ।  
ब्रह्मीभूतस्य यते प्रागेव हि तच्चिदग्निना दग्धम् ॥

सदात्मनि ब्रह्मणि तिष्ठतो मुने  
पूर्णाद्वयानन्दमयात्मना सदा ।  
न देशकालाद्युचितप्रतीक्षा  
त्वङ्मासविट्पिण्डविसर्जनाय ॥ ५५८ ॥

देहस्य मोक्षो नो मोक्षो न दण्डस्य कमण्डलो  
अविद्याहृदयग्रन्थिमोक्षो मोक्षो यतस्तत ॥

कुल्यायामथ नद्या वा शिवक्षेत्रेऽपि चत्वरे ।  
पर्णं पतति चेत्तेन तरो किं नु शुभाशुभम् ॥

पत्रस्य पुष्पस्य फलस्य नाशव  
इहेन्द्रियप्राणधिया विनाश ।  
नैवात्मन स्वस्य सदात्मकस्या  
नन्दाकृतेर्वृक्षवदास्त एष ॥

प्रज्ञानघन इत्यात्मलक्षण सत्यसूचकम् ।  
अनूद्यौपाधिकस्यैव कथयन्ति विनाशनम् ॥  
अविनाशी वा अरेयमात्मेति श्रुतिरात्मन ।  
प्रब्रवीत्यविनाशित्व विनश्यत्सु विकारिषु ॥ ५६३ ॥

पाषाणवृक्षतृणधान्यकटाम्बराद्या  
 दग्गा भवन्ति हि मृदेव यथा तथैव ।  
 देहेन्द्रियासुमनःआदि समस्तदृश्य  
 ज्ञानाग्निदग्धमुपयाति परात्मभावम् ॥ ५६४ ॥

विलक्षण यथा ध्वान्त लीयते भानुतेजसि ।  
 तथैव सकल दृश्य ब्रह्मणि प्रविलीयते ॥

घटे नष्टे यथा व्योम व्यामैव भवति स्फुटम् ।  
 तथैवोपाधिविलये ब्रह्मेव ब्रह्मवित्स्वयम् ॥ ५६६ ॥

क्षीर क्षीरे यथा क्षिप्त तैल तैले जल जले ।  
 सयुक्तमेकता यानि तथात्मन्यात्मविन्मुनि ॥

एव विदेहकैवल्य सन्मात्रत्वमखण्डितम् ।  
 ब्रह्मभाव प्रपद्यैष यतिर्नावर्तने पुन ॥ ५६८ ॥

सदात्मैकत्वविज्ञानदग्धाविद्यादिवर्षण ।  
 अमुष्य ब्रह्मभूतत्वाद्ब्रह्मण कुत उद्भव ॥

मायाक्लृप्तौ बन्धमोक्षो न स्त स्वात्मनि वस्तुत ।  
 यथा रज्जौ निष्क्रियाया सर्पाभासविनिर्गमौ ॥ ५७० ॥



आवृते सदसत्त्वाभ्या वक्तव्य बन्धमोक्षणे ।  
 नावृतिर्ब्रह्मण काचिदन्याभावादनावृतम् ।  
 यद्यस्त्यद्वैतहानि स्याद्वैत नो सहने श्रुति ॥

बन् प्रश्न मोक्षश्च मृषैव मूढा  
 बुद्धेर्गुण वस्तुनि कल्पयन्ति ।  
 दृगावृति मेघकृता यथा रवौ  
 यतोऽद्वयासङ्गचिदेकमक्षरम् ॥

अस्तीति प्रत्ययो यश्च  
 यश्च नास्तीति वस्तुनि  
 बुद्धेरेव गुणावेतौ  
 न तु नित्यस्य वस्तुन ॥

अतस्तौ मायया क्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न चात्मनि  
 निष्कले निष्क्रिये शान्ते निरवद्य निरञ्जने ।  
 अद्वितीये परे तत्त्वे व्योमवन्कल्पना कुत ॥

न निरोधो न चोत्पत्ति  
 न बन्धो न च साधक ।  
 न मुमुक्षुर्न वै मुक्त  
 इत्येषा परमार्थता ॥ ५७७ ॥

सकलनिगमचूडास्वान्तसिद्धान्तगुह्य  
 परमिदमतिगुह्य दर्शित ते मयाद्य ।  
 अपगतकलिदोष कामनिर्मुक्तबुद्धि  
 स्तदतुलमसकृत्त्व भावयेद मुमुक्षु ॥ ७६ ॥

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्य  
 प्रश्रयेण कृतानति ।  
 स तेन समनुज्ञातो  
 ययौ निर्मुक्तव धन ॥ ७७ ॥

गुरुरेष सदानन्द  
 सिन्धो निर्मग्नमानस ।  
 पावयन्वसुधा सर्वा  
 विचचार निरन्तर ॥ ७८ ॥

इत्याचार्यस्य शिष्यस्य  
 सवादेनात्मलक्षणम् ।  
 निरूपित मुमुक्षूणा  
 सुखबोधोपपत्तये ॥ ७९ ॥

हितमिदमुपदेशमाद्रियन्ता  
 विहितनिरस्तसमस्तचित्तदोषा ।

भवसुखविरता प्रशान्तचित्ता

श्रुतिरसिका यतयो मुमुक्षवो ये ॥ ५८० ॥

ससाराध्वनि तापभानुकिरणप्रोज्झितदाहव्यथा

खिन्नाना जलकाङ्क्षया मरुभुवि भ्रान्त्या परिभ्राम्यताम् ।

अन्यासन्नसुधाम्बुधि सुखकर ब्रह्माद्वय दर्शय

न्त्येषा शकरभारती विजयते निर्वाणसदायिनी ॥ ५८१ ॥

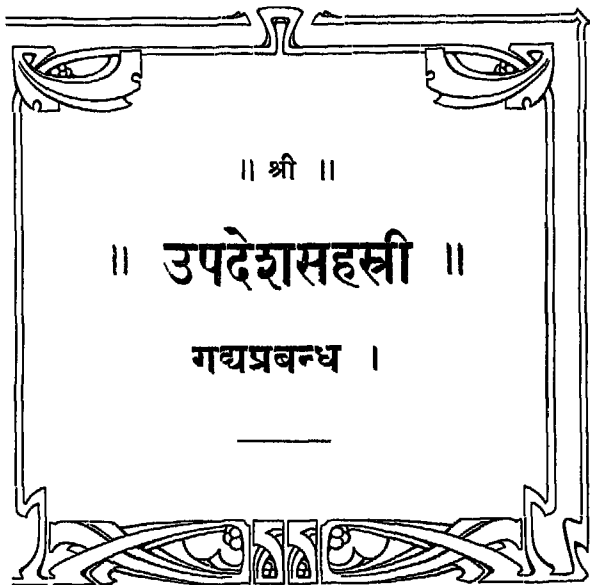
इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्

पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छकरभगवत कृतौ

विवेकचूडामणि समाप्त ॥



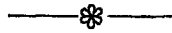






॥ श्री ॥

# ॥ उपदेशसहस्री ॥



शिष्यानुशासनप्रकरणम् ।



थ मोक्षसाधनोपदेशविधि व्याख्यास्यामो  
मुमुक्षूणा श्रद्धानानामर्थिनामर्थाय ॥ १ ॥

तदिदं मोक्षसाधनं ज्ञानसाधनसाध्याद-  
नित्यात्सर्वस्माद्विरक्ताय त्यक्तपुत्रवित्तलोकैष-  
णाय प्रतिपन्नपरमहंसपारिव्राज्याय शमदमदयादियुक्ताय शा-  
स्त्रप्रसिद्धशिष्यगुणसपन्नाय शुचये ब्राह्मणाय विधिवदुपसन्नाय  
शिष्याय जातिकर्मवृत्तविद्याभिजनैः परीक्षिताय ब्रूयात्पुन  
पुन यावद्गृहणं दृढीभवति ॥ २ ॥

श्रुतिश्च— 'परीक्ष्य तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्' इति ।  
दृढगृहीता हि विद्या आत्मनः श्रेयसे सततैश्च भवति ।  
विद्यासततश्च प्राण्यनुग्रहाय भवति, नौरिव नदी तृतीर्षो ।

शास्त्रं च— ‘यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीता धनस्य पूर्णा  
दद्यादेतदेव ततो भूय ’ इति । अन्यथा च ज्ञानप्राप्त्यभावात्  
‘आचार्यवान् पुरुषो वेद’ ‘आचार्याद्वैव विद्या विदिता’  
‘आचार्यं प्लावयिता तस्य सम्यग्ज्ञानं प्रव इहोच्यते’ इत्या-  
दिश्रुतिभ्यः, ‘उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानम्’ इत्यादिस्मृतिभ्यश्च ॥

शिष्यस्य ज्ञानाग्रहणं च लिङ्गैर्बुद्ध्या तदग्रहणहेतून् अधर्म-  
लौकिकप्रमादनित्यानित्यवस्तुविवेकविषयासजातदृढपूर्वश्रुतत्व-  
लोकचिन्तावेक्षणजात्याद्यभिमानादीन् तत्प्रतिपक्षैः श्रुतिस्मृ-  
तिविहितैः अपनयेत् अक्रोधादिभिः अहिंसादिभिश्च यमैः,  
ज्ञानाविरुद्धैश्च नियमैः ॥ ४ ॥

अमानित्वादिगुणं च ज्ञानोपायं सम्यग्ग्राहयेत् ॥ ५ ॥

आचार्यस्तु ऊहापोहग्रहणधारणशमदमदयानुग्रहादिसपन्नो  
लब्धागमो दृष्टान्दृष्टभोगोऽवनासक्तः त्यक्तसर्वकर्मसाधनो ब्रह्म-  
वित् ब्रह्मणि स्थितः अभिन्नवृत्तो दम्भदर्पकुहकशाठ्यमायामा-  
त्सर्यान्तःकारममत्वादिदोषविवर्जितः केवलपरानुग्रहप्रयोजनो  
विद्योपयोगार्थी पूर्वमुपदिशेत् ‘सदेव सोम्येदमग्र आसीदे-  
कमेवाद्वितीयम्’ ‘यत्र नान्यत्पश्यति’ ‘आत्मैवेद सर्वम्’  
‘आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्’ ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’



इत्याद्या आत्मैक्यप्रतिपादनपरा श्रुती ॥ ६ ॥

उपदिश्य च ग्राहयेत् ब्रह्मणो लक्षणम् 'य आत्मापहत-  
पाप्मा' 'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म' 'योऽशनायापिपासे' 'नेति  
नेति' 'अस्थूलमनणु' 'स एष नेति नेति' 'अदृष्ट द्रष्टृ'  
'विज्ञानमानन्द ब्रह्म' 'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म' 'अदृश्येऽना-  
त्म्येऽनिरुक्ते' 'स वा एष महानज आत्मा' 'अप्राणो ह्य-  
मना' 'सबाह्याभ्यन्तरो ह्यज' 'विज्ञानघन एव' 'अन-  
न्तरमबाह्यम्' 'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि' 'आ-  
काशो वै नाम' इत्यादिश्रुतिभि ॥ ७ ॥

स्मृतिभिश्च— 'न जायते म्रियते' 'नादत्ते कस्यचित्पा-  
पम् 'यथाकाशस्थितो नित्यम्' 'क्षेत्रज्ञ चापि मा विद्धि'  
'न सत्तन्नासदुच्यते' 'अनादित्वान्निर्गुणत्वात्' 'सम सर्वेषु  
भूतेषु' 'उत्तम पुरुषस्त्वन्य' इत्यादिभि श्रुत्युक्तलक्षणावि-  
रुद्धाभि परमात्माससारित्वप्रतिपादनपराभि तस्य सर्वेणा-  
नन्यत्वप्रतिपादनपराभिश्च ॥ ८ ॥

एव श्रुतिस्मृतिभि गृहीतपरमात्मलक्षण शिष्य ससारसा-  
गरादुत्तितीर्षु पृच्छेत्— कस्त्वमसि सोम्य इति ॥ ९ ॥

स यदि ब्रूयात्— ब्राह्मणपुत्र अदोन्वय ब्रह्मचार्या-

सम्, गृहस्थो वा, इदानीमस्मि परमहसपरिव्राद् ससारसा  
गरात् जन्ममृत्युमहाप्राहात् उत्तितीर्षुरिति ॥ १० ॥

आचार्यो ब्रूयात्— इहैव तव सोम्य मृतस्य शरीर वयो-  
भिरद्यते मृद्गाव वापद्यते । तत्र कथं ससारसागरादुद्धर्तुमि-  
च्छसीति । न हि नद्या अवरे कूले भस्मीभूते नद्या पारं  
तरिष्यसीति ॥ ११ ॥

स यदि ब्रूयात्— अन्योऽहं शरीरात् । शरीरं तु जायते  
म्रियते वयोभिरद्यते मृद्गावमापद्यते शस्त्राग्न्यादिभिश्च विना  
श्यते व्याध्यादिभिश्च प्रयुज्यते । तस्मिन् अहं स्वकृतधर्माध-  
र्मवशात् पक्षी नीडमिव प्रविष्टं पुनः पुनः शरीरविनाशे  
धर्माधर्मवशात् शरीरान्तरं यास्यामि पूर्वनीडविनाशे पक्षीव  
नीडान्तरम् । एवमेवाहमनादौ ससारे देवमनुष्यतिर्यङ्निर-  
यस्थानेषु स्वकर्मवशादुपात्तमुपात्तं शरीरं त्यजन् नव नव चा-  
न्यदुपाददानो जन्ममरणप्रबन्धचक्रे घटीयन्त्रवत् स्वकर्मणा  
भ्रान्त्यमाणं क्रमेणेद् शरीरमासाद्य ससारचक्रभ्रमणादस्मान्नि-  
र्विण्णो भगवन्तमुपसन्नोऽस्मि ससारचक्रभ्रमणप्रशमनाय ।  
तस्मान्नित्य एवाहं शरीरादन्यं । शरीराणि आगच्छन्त्यपग-  
च्छन्ति च वासासीव पुरुषस्येति ॥ १२ ॥

आचार्यो ब्रूयात्— साध्ववादी, सम्यक्पश्यसि । कथ  
मृषा अवादी ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यासम्, गृहस्थो  
वा, इदानीमस्मि परमहसपरिव्राडिति ॥ १३ ॥

स यदि ब्रूयात्— भगवन् कथमह मृषावादिषम् इति ॥

त प्रति ब्रूयादाचार्य — यतस्त्व भिन्नजात्यन्वयसस्कार  
शरीर जात्यन्वयसस्कारवर्जितस्यात्मन प्रत्यभ्यज्ञासी ब्राह्म-  
णपुत्रोऽदोन्वय इत्यादिना वाक्येनेति ॥ १५ ॥

स यदि पृच्छेत्— कथ भिन्नजात्यन्वयसस्कार शरीरम्,  
कथ वा अह जात्यन्वयसस्कारवर्जित इति ॥ १६ ॥

आचार्यो ब्रूयात्— शृणु सोम्य तदेव यथेद शरीर त्वत्तो  
भिन्न भिन्नजात्यन्वयसस्कारम्, त्व च जात्यन्वयसस्कारवर्जित  
इत्युक्त्वा त स्मारयेत्— स्मर्तुमर्हसि सोम्य परमात्मान सर्वा-  
त्मान यथोक्तलक्षण श्रावितोऽसि 'सदेव सोम्येदम्' इत्यादिभि  
श्रुतिभि स्मृतिभिश्च, लक्षण च तस्य श्रुतिभि स्मृतिभिश्च ॥

लब्धपरमात्मलक्षणस्मृतये ब्रूयात्— योऽसावाकाशनामा  
नामरूपाभ्यामर्थान्तरभूत अशरीर अस्थूलादिलक्षण अप  
हतपाप्मत्वादिलक्षणश्च सर्वे ससारधर्मैरनागन्धित यत्साक्षा-  
दपरोक्षाद्ब्रह्म ण्ठ त आत्मा सर्वान्तर अदृष्टो द्रष्टा अश्रुत श्रो-

ता अमतो मन्ता अविज्ञातो विज्ञाता नित्याविज्ञानस्वरूप अनन्तर अबाह्य विज्ञानघन एव परिपूर्ण आकाशवत् अनन्त शक्ति आत्मा सर्वस्य अज्ञानायादिवर्जित आविर्भावतिरोभाववर्जितश्च स्वात्मविलक्षणयो नामरूपयो जगद्धीजभूतयो स्वात्मस्थयो तन्वान्यत्वाभ्यामनिर्वचनीययो स्वसवेद्यया सद्भावमात्रेणाचिन्त्यशक्तित्वाभ्याकर्ता अव्याकृतयो ॥ १८ ॥

ते नामरूपे अव्याकृते सती व्याक्रियमाणे तस्मादेतस्मादात्मन आकाशनामाकृती सवृत्ते । तच्चाकाशाख्य भूतमनेन प्रकारेण परमात्मन सभूत प्रसन्नादिव सलिलान्मलमिव फेनम् । न सलिल न च सलिलादत्यन्त भिन्न फेनम्, सलिलव्यतिरेकेणादर्शनात्, सलिल तु स्वच्छम् अन्यत फेनान्मलरूपात् । एव परमात्मा नामरूपाभ्यामन्य फेनस्थानीयाभ्या शुद्ध प्रसन्नस्तद्विलक्षण । ते नामरूपे अव्याकृते सती व्याक्रियमाणे फेनस्थानीये आकाशनामाकृती सवृत्ते ॥ १९ ॥

ततोऽपि स्थूलभावमापन्नमाने नामरूपे व्याक्रियमाणे वायुभावमापद्येते, ततोऽप्यग्निभावम्, अग्नेरब्धभावम्, तत पृथिवीभावम्, इत्येवक्रमेण पूर्वपूर्वभवस्योत्तरोत्तरानुप्रवेशेन पञ्च महाभूतानि पृथिव्यन्तान्युत्पन्नानि । तत पञ्चगुणविशिष्टा

पृथिवी । पृथिव्याश्च पञ्चात्मिका ब्रीहियवाद्या ओषधय  
जायन्ते । ताभ्यो भक्षिताभ्यो लोहित श्रुक् च स्त्रीपुंसशरीरस-  
बन्धि जायते । तद्भयम् ऋतुकाले अविद्याप्रयुक्तकामखज-  
निर्मथनोद्भूतं मन्त्रसस्कृत गर्भाशये निषिच्यते । तत्स्वयोनि-  
रसानुप्रवेशेन विवर्धमान गर्भीभूत नवमे दशमे वा मासि  
जायते ॥ २० ॥

तज्जात लब्धनामाकृतिक जातकर्मादिभि मन्त्रसस्कृत  
पुन उपनयनसस्कारयोगेण ब्रह्मचारिसङ्ग भवति । तदेव शरीर  
पत्नीयोगसस्कारयोगेण गृहस्थसङ्ग भवति । तदेव वनस्थसस्का-  
रेण तापससङ्ग भवति । तदेव क्रियानिवृत्तिनिमित्तेन सस्का-  
रेण परित्राद्सङ्ग भवति । इत्येव त्वत्तो भिन्न भिन्नजात्यन्वय-  
सस्कार शरीरम् ॥ २१ ॥

मनश्चेन्द्रियाणि च नामरूपात्मकान्येव, 'अन्नमय हि सो-  
म्य मन ' इत्यादिश्रुतिभ्य ॥ २२ ॥

कथं चाह भिन्नजात्यन्वयसस्कारवर्जित इत्येतच्छृणु—  
योऽसौ नामरूपयोर्व्याकर्ता नामरूपधर्मविलक्षण स एव नाम-  
रूपे व्याकुर्वन् सृष्ट्वेदं शरीरं स्वयं सस्कारधर्मवर्जितो नामरूपे  
इह प्रविष्टं अन्यैरहृष्टं स्वयं पश्यन् तथा अश्रुतं शृण्वन्

अमतो मन्वान अविज्ञातो विजानन सर्वाणि रूपाणि विचित्र्य  
धीरो नामानि कृत्वाभिवदन्यदास्ते इति । अस्मिन्नर्थे श्रुतय  
सहस्रश — ‘तत्सृष्ट्वा । तदेवानुप्राविशत्’ ‘अन्त प्रविष्ट  
शास्ता जनानाम्’ ‘स एष इह प्रविष्ट’ ‘एष त आत्मा’  
‘स एतमेव सीमान विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत्’ ‘एष सर्वेषु  
भूतेषु गूढोऽत्मा’ ‘सेय देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिन्नो देवता’  
इत्याग्रा श्रुतय ॥ २३ ॥

स्मृतयोऽपि—‘आत्मैव देवता सर्वा’ ‘नवद्वारे पुरे देही  
‘क्षेत्रज्ञ चापि मा विद्धि’ ‘सम सर्वेषु भूतेषु’ ‘उपद्रष्टानुम-  
न्ता च’ ‘उत्तम पुरुषस्त्वन्य’ ‘अशरीर शरीरेषु’ इत्या-  
द्या । तस्मात् जात्यन्वयसंस्कारवर्जितस्त्वमिति सिद्धम् ॥२४॥

स यदि ब्रूयात्— अन्य एवाहमज्ञ सुखी दुःखी बद्ध  
ससारी, अन्योऽसौ मद्विलक्षण अससारी देव, तमह बल्यु  
पहारनमस्कारादिभि वर्णाश्रमकर्मभिश्चाराध्य ससारसागरा-  
दुत्तितीर्षुरस्मि । कथमहं स एवेति ॥ २५ ॥

आचार्यो ब्रूयात्— नैव सोम्य प्रतिपत्तुमर्हसि, प्रतिषिद्ध-  
त्वाद्भेदप्रतिपत्ते । कथं प्रादिषिद्धा भेदप्रतिपत्तिरित्यत आह—  
‘अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद’ ‘ब्रह्म त परादाद्यो-

ऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद' 'मृत्यो स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्येवमाद्या ॥ २६ ॥

एता एव श्रुतयो भेदप्रतिपत्ते ससारगमन दर्शयन्ति ॥२७॥

अभेदप्रतिपत्तेश्च मोक्ष दर्शयन्ति सहस्रश । 'स आत्मा तत्त्वमसि इति परमात्मभाव विधाय 'आचार्यवान्पुरुषो वेद' इत्युक्त्वा 'तस्य तावदेव चिरम् इति मोक्ष दर्शयन्त्यभेदविज्ञानादेव । सत्याभिसवस्यातस्करस्येव दाहाद्यभावदृष्टान्तेन ससाराभाव दर्शयन्ति । भेददर्शनादसत्याभिसवस्य ससारगमन दर्शयन्ति तस्करस्येव दाहादिदृष्टान्तेन ॥ २८ ॥

'त इह व्याघ्रो वा इत्यादिना च अभेददर्शनात् 'स स्वराद् भवति' इत्युक्त्वा तद्विपरीतेन भेददर्शनेन ससारगमन दर्शयन्ति 'अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति' इति प्रतिशारम् । तस्मात् मृषैवैवमवादी ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वय ससारी परमात्मविलक्षण इति ॥ २९ ॥

तस्मात्प्रतिषिद्धत्वाद्भेददर्शनस्य, भेदविषयत्वाच्च कर्मोपादानस्य, कर्मसाधनत्वाच्च यज्ञोपवीतादे, कर्मसाधनोपादानस्य परमात्माभेदप्रतिपत्त्या प्रतिषेध कृतो वेदितव्य, कर्मणा तत्साधनाना च यज्ञोपवीतादीना परमात्माभेदप्रतिपत्तिविरु-

द्धत्वात् । ससारिणो हि कर्माणि विधीयन्ते तत्साधनानि च यज्ञोपवीतादीनि, न परमात्मनोऽभेददर्शिन । भेददर्शनमात्रेण च ततोऽन्यत्वम् ॥ ३० ॥

यदि कर्माणि कर्तव्यानि न निविवर्तयिषितानि कर्मसाधनासबन्धिन कर्मनिमित्तजात्याश्रमाद्यसबन्धिनश्च, परमात्मनश्च आत्मनैवाभेदप्रतिपत्ति नावक्ष्यत् 'स आत्मा तत्त्वमसि' इत्येवमादिभिर्निश्चितरूपैर्वाक्यै, भेदप्रतिपत्तिनिन्दा च नाभ्यधास्यत् 'एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य' 'अनन्वागत पुण्येनानन्वागत पापेन' 'अत्र स्तेनोऽस्तेन' इत्यादिना ॥

कर्मासबन्धिस्वरूपत्व कर्मनिमित्तवर्णाङ्गसबन्धरूपता च नाभ्यधास्यत् कर्माणि च कर्मसाधनानि च यज्ञोपवीतादीनि यद्यपरितित्याजयिषितानि । तस्मात्ससाधन कर्म परित्यक्तव्य मुमुक्षुणा, परमात्माभेददर्शनविरोधात् । आत्मा च पर एवेति प्रतिपत्तव्यो यथाश्रुत्युक्तलक्षण ॥ ३० ॥

स यदि ब्रूयात्— भगवन्, दह्यमाने च्छिद्यमाने वा देहे प्रत्यक्षा वेदना, अशनायादिनिमित्त च प्रत्यक्ष दुःखमम । परश्चायमात्मायमात्मापहतपाप्मा विरजो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपास सर्वगन्धरसवर्जित श्रूयते सर्वश्रुतिषु



स्मृतिषु च । कथं तद्विलक्षणं अनेकससारधर्मसयुक्तं परमात्मानमात्मत्वेन मा च ससारिणं परमात्मत्वेन अग्निमिव शीतत्वेन प्रतिपद्येयं ? ससारी च सन् सर्वाभ्युदयानि श्रेयससाधने अधिकृतं अभ्युदयानि श्रेयससाधनानि कर्माणि तत्साधनानि च यज्ञोपवीतादीनि कथं परित्यजेयमिति ॥ ३३ ॥

तं प्रति ब्रूयात्— यदवोचो दह्यमाने च्छिद्यमाने वा देहे प्रत्यक्षा वेदनोपलभ्यते ममेति, तदसत् । कस्मात् ? दह्यमाने च्छिद्यमाने इव वृक्षे उपलब्धुरूपलभ्यमाने कर्मणि शरीरे दाहच्छेदवेदनाया उपलभ्यमानत्वात् दाहादिसमानाश्रयैव वेदना । यत्र हि दाहश्चेदो वा क्रियते तत्रैव व्यपदिशति दाहादि वेदना लोक, न वेदना दाहाद्युपलब्धरीति । कथम् ? कं ते वेदनेति पृष्ठं शिरसि मे वेदना उरसि उदरे इति वा यत्र दाहादिस्तत्रैव व्यपदिशति, न तूपलब्धरीति । यद्युपलब्धिरिव वेदना ह्यात् वेदनानिमित्तं वा दाहच्छेदादि वेदनाश्रयत्वेनोपदिशेद्दाहाद्याश्रयवत् ॥ ३४ ॥

स्वयं च नोपलभ्येत, चक्षुर्गतं रूपवत् । तस्मात् दाहच्छेदादिसमानाश्रयत्वेन उपलभ्यमानत्वाद्दाहादिवत् कर्मभूतैव वेदना । भावरूपत्वाच्च साश्रया तण्डुलपाकवत् । वेदनासमानाश्रय

एव तत्सस्कार स्मृतिसमानकाल एवोपलभ्यमानत्वात् वेद-  
नाविषय तन्निमित्तविषयश्च द्वेषोऽपि सस्कारसमानाश्रय  
एव । तथा चोक्तम्— रूपसस्कारतुल्याधी रागद्वेषौ भय च  
यत् । गृह्यते धीश्रय तस्माज्ज्ञाता शुद्धोऽभय सदा ॥ ३५ ॥

किमाश्रया पुन रूपादिसस्कारादय इति, उच्यते— यत्र  
कामादय । क पुनस्ते कामादय ? ‘काम सकल्पो विचि-  
कित्सा’ इत्यादिश्रुते बुद्धावेव । तत्रैव रूपादिसस्कारादयोऽपि,  
‘कस्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृदये’ इति श्रुते । ‘कामा  
येऽस्य हृदि श्रिता’ ‘तीर्णो हि यदा सर्वान् शोकान् हृद-  
यस्य’ ‘असङ्गो ह्ययम्’ ‘तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा’ इत्या-  
दिश्रुतिशतेभ्य, ‘अविकार्योऽयमुच्यते’ ‘अनादित्वान्निर्गुण-  
त्वात्’ इत्यादिभ्य — इच्छाद्वेषादि च क्षेत्रस्यैव विषयस्य  
धर्मो नात्मन इति— स्मृतिभ्यश्च कर्मस्थैवाशुद्धि नात्मस्था  
इति ॥ ३६ ॥

अतो रूपादिसस्काराद्यशुद्धिसंबन्धाभावात् न परस्मादा-  
त्मनो विलक्षणस्त्वमिति प्रत्यक्षादिविरोधाभावात् युक्त पर  
एवात्माहमिति प्रतिपत्तुम्, ‘तदात्मानमेवावेदह ब्रह्मास्मीति’  
‘एकधैवाऽनुद्रष्टव्यम्’ ‘अहमेवाधस्तात्’ ‘आत्मैवाधस्तात्’

‘सर्वमात्मान पश्येत्’ ‘यत्र त्वस्य सर्वमात्मैव’ ‘इद सर्व  
यद्यमात्मा’ ‘स एषोऽकल’, ‘अनन्तरमबाह्यम्’ ‘सबा-  
ह्याभ्यन्तरो ह्यज’ ‘ब्रह्मवेदम्’ ‘एतया द्वारा प्रापद्यत  
‘प्रह्वानस्य नामधेयानि’ ‘सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म’ ‘तस्माद्वा’  
‘तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्’ ‘एको देव सर्वभूतेषु गूढ  
सर्वव्यापी’ ‘अशरीर शरीरेषु’ ‘न जायते म्रियते’ ‘स्वप्ना-  
न्त जागरितान्तम्’ ‘स म आत्मेति विद्यात्’ ‘यस्तु स-  
र्वाणि भूतानि’ ‘तदेजति तन्नैजति’ ‘वेनस्तत्पश्यन्’ ‘तदे-  
वाग्नि’ ‘अह मनुरभव सूर्यश्च’ ‘अन्त प्रविष्ट शास्ता जना  
नाम्’ ‘सदेव सौम्य’ ‘तत्सत्य स आत्मा तत्त्वमसि’ इत्या-  
दिश्रुतिभ्य ॥ ३७ ॥

स्मृतिभ्यश्च ‘पू प्राणिन सर्व एव गुहाशयस्य’ ‘आत्मैव  
देवता’ ‘नवद्वारे पुरे’ ‘सम सर्वेषु भूतेषु’ ‘विद्याविनय-  
सपन्ने’ ‘अविभक्त विभक्तेषु’ ‘वासुदेव सर्वम्’ इत्यादि-  
भ्य एक एवात्मा पर ब्रह्म सर्वससारधर्मविनिर्मुक्तस्त्वमिति  
सिद्धम् ॥ ३८ ॥

स यदि ब्रूयात्— यदि भगवन् अनन्तर अबाह्य  
सबाह्याभ्यन्तरो ह्यज कृत्स्न प्रह्वानघन एव सैन्धवघनव-

दात्मा सर्वमूर्तिभेदवर्जित आकाशवदेकरस , किमिदं दृश्यते श्रूयते वा साध्य साधन वा साधकश्चेति श्रुतिस्मृतिलोकप्रसिद्धवादिशतविप्रतिपत्तिविषय इति ॥ ३९ ॥

आचार्यो ब्रूयात्— अविद्याकृतमेतद्यदिदं दृश्यते श्रूयते वा साध्य साधन साधकश्चेति । परमार्थतस्त्वेक एवात्मा अविद्यादृष्टे अनेकवत् आभासते, तिमिरदृष्टया अनेकचन्द्रवत् । ‘यत्र वा अन्यदिव स्यात्’ ‘यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतर पश्यति’ ‘मृत्यो स मृत्युमाप्नोति’ ‘अथ यत्रान्यत्पश्यति अन्यच्छृणोति अन्यद्विजानाति तदल्पम्’ ‘अथ यदल्प तन्मर्त्यामिति’ ‘वाचारम्भण विकारो नामधेयम् ‘अनृतम्’ ‘अन्योऽसावन्योऽहम्’ इति भेददर्शननिन्दोपपत्तेरविद्याकृत द्वैतम्, ‘एकमेवाद्वितीयम्’ ‘यत्न त्वस्य’ ‘को मोह क शोक’ इत्याद्येकत्वविधिभ्रुतिभ्यश्चेति ॥ ४० ॥

यद्येव भगवन्, किमर्थं श्रुत्या साध्यसाधनादिभेद उच्यते उत्पत्ति प्रलयश्चेति ? ॥ ४१ ॥

अत्रोन्यते— अविद्यावत् उपात्तशरीरादिभेदस्य इष्टानिष्टयोगिनमात्मान मन्यमानस्य साधनैरेवेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारोपायविवेकमजानत इष्टप्राप्तिं चानिष्टपरिहार चेच्छत शनै-

स्तद्विषयमज्ञानं निर्वर्तयितुं शास्त्रम्, न साध्यसाधनादिभेदविधत्ते, अनिष्टरूपससारो हि स इति । तद्भेददृष्टिमेवाविद्याससारमूलमुन्मूलयति उत्पत्तिप्रलयाद्येकत्वोपपत्तिप्रदर्शनेन ॥ ४२ ॥

अविद्यायामुन्मूलिताया श्रुतिस्मृतिन्यायेभ्योऽनन्तरोऽबाह्यसबाह्याभ्यन्तरो ह्यजसैन्धवघनवत्प्रज्ञानघन एवैकरस आत्मा आकाशवत्परिपूर्ण इत्यत्रैव एका प्रज्ञा प्रतिष्ठा परमार्थदर्शिनो भवति । न साध्यसाधनोत्पत्तिप्रलयादिभेदेन अशुद्धिगन्धोऽप्युपपद्यते ॥ ४३ ॥

तच्चैतत् परमार्थदर्शनप्रतिपत्तुमिच्छता वर्णाश्रमाद्यभिमानकृतपाङ्क्तुरूपपुत्रवित्तलोकैषणादिभ्यो व्युत्थानकर्तव्यम्, सम्यक्प्रत्ययविरोधात्तदभिमानस्य । भेददर्शनप्रतिषेधार्थोपपत्तिश्चोपपद्यते । न ह्येकस्मिन्नात्मन्यससारित्वबुद्धौ शास्त्रन्यायोत्पादिताया तद्विपरीता बुद्धिर्भवति । न ह्यमौ शीतत्वबुद्धिः, शरीरे वा अजरामरणत्वबुद्धिः । तस्मादविद्याकार्यत्वात्सर्वकर्मणा तत्साधनानां च यज्ञोपवीतादीनां परमार्थदर्शननिष्ठेन त्यागकर्तव्यं ॥ ४४ ॥



### कूटस्थाद्वयात्मबोधप्रकरणम् ।

सुखमासीन ब्राह्मण ब्रह्मनिष्ठ कश्चित् ब्रह्मचारी जन्मजरा-  
मरणलक्षणात् ससारात् निर्विण्णो मुमुक्षु विधिवदुपसन्न प-  
प्रच्छ— भगवन्, कथमह ससारान्मोक्षये शरीरेन्द्रियविष-  
यवेदनावान् । जागरिते दु खमनुभवामि, तथा स्वप्नेऽनुभ-  
वामि । पुन पुन सुषुप्तिप्रतिपत्त्या विश्रम्य विश्रम्य जाग्र-  
त्स्वप्नयोर्दु खमनुभवामि । किमयमेव मम स्वभाव ? किं वा  
अन्यस्वभावस्य सतो नैमित्तिक ? इति । यदि अयमेव स्व-  
भाव, न मे मोक्षाशा, स्वभावस्यावर्जनीयत्वात् । अथ नैमि-  
त्तिक, निमित्तपरिहारे स्यान्मोक्षोपपत्ति ॥ ४५ ॥

त गुरुर्वाच—शृणु वत्स, न तवाय स्वभाव, कितु नै-  
मित्तिक ॥ ४६ ॥

इत्युक्त शिष्य उवाच—किं निमित्तम् ? किं वा तस्य नि-  
वर्तकम् ? को वा मम स्वभाव ? यस्मिन्निमित्ते निवर्तिते नै-  
मित्तिकाभाव रोगनिमित्तनिवृत्ताविव रोगी स्वभाव प्रातिपद्ये-  
येति ॥ ४७ ॥

गुरुर्वाच—अविद्या निमित्तम्, विद्या तस्या निवर्तिका ।  
अविद्याया निवृत्ताया तन्निमित्ताभावात् मोक्ष्यसे जन्ममरण-

लक्षणात्ससारात् । स्वप्नजाग्रदु ख च नानुभविष्यसीति ॥

शिष्य उवाच— का सा अविद्या? किंविषया वा? विद्या च का अविद्यानिवर्तिका यया स्वभाव प्रतिपद्येय? इति ॥

गुरुर्वाच— त्व परमात्मान सन्तम् अससारिण ससार्थ-  
हमस्मीति विपरीत प्रतिपद्यसे, अकर्तार सन्त कर्तेति, अभो-  
क्तार सन्त भोक्तेति, विद्यमान चाविद्यमानमिति । इयम-  
विद्या ॥ ५० ॥

शिष्य उवाच— यन्प्यह विद्यमान, तथापि न परमा-  
त्मा । कर्तृत्वभोक्तृत्वलक्षण ससारो मम स्वभाव, प्रत्यक्षा-  
दिभि प्रमाणै अनुभूयमानत्वान् । न अविद्यानिमित्त, अविद्यायाश्चात्मविषयत्वानुपपत्ते । अविद्या नाम अन्यस्मिन्  
अन्यधर्माध्यारोपणा, यथा प्रसिद्ध रजत प्रसिद्धाया शुक्ति-  
कायाम्, यथा प्रसिद्ध पुरुष स्थाणावध्यारोपयति, प्रसिद्ध  
वा स्थाणु पुरुषे, नाप्रसिद्ध प्रसिद्धे, प्रसिद्ध वा अप्रसिद्धे । न  
च आत्मन्यनात्मानमध्यारोपयति, आत्मन अप्रसिद्धत्वात्,  
तथा आत्मानम् अनात्मनि, आत्मनोऽप्रसिद्धत्वादेव ॥ ५१ ॥

त गुरुर्वाच— न, व्यभिचारात् । न हि वत्स, प्रसिद्ध  
प्रसिद्ध एवाध्यारोपयतीति नियन्तु शक्यम्, आत्मन्यध्या-

रोपणदर्शनात्, गौरोऽह कृष्णोऽहमिति देहधर्मस्य अहप्रत्ययविषये आत्मनि, अहप्रत्ययविषयस्य च आत्मन देहे अयमहमस्मीति ॥ ५२ ॥

शिष्य आह— प्रसिद्ध एव तर्ह्यात्मा अहप्रत्ययविषयतया, देहश्च अयमिति । तत्रैव सति, प्रसिद्धयोरेव देहात्मनोरितरेतराध्यारोपणा स्थाणुपुरुषयो शुक्तिकारजतयोरिव । तत्र क विशेषमाश्रित्य भगवतोक्त प्रसिद्धयोरितरेतराध्यारोपणेति नियन्तु न शक्यते इति ? ॥ ५३ ॥

गुरुराह— शृणु, सत्य प्रसिद्धौ देहात्मनौ । न तु स्थाणुपुरुषाविव विविक्तप्रत्ययविषयतया सर्वलोकप्रसिद्धौ । कथं तर्हि ? नित्यमेव निरन्तराविविक्तप्रत्ययविषयतया प्रसिद्धौ । न हि अयं देह, अयमात्मा, इति विविक्ताभ्यां प्रत्ययाभ्यां देहात्मनौ गृह्णाति यं कश्चित् । अत एव हि मोमुह्यते लोक आत्मानात्मविषये एवमात्मा, नैवमात्मा इति । इमं विशेषमाश्रित्यावोच नैव नियन्तु शक्यमिति ॥ ५४ ॥

ननु, अविद्याध्यारोपितं यत्र यत् तदसत् तत्र दृष्टम्, यथा रजतं शुक्तिकायाम्, स्थाणौ पुरुषं, रज्ज्वा सर्पं, आकाशे तलमलिनत्वमित्यादि । तथा देहात्मनोरपि नित्य-



मेव निरन्तराविविक्तप्रत्ययेन इतरेतराध्यारोपणा कृता स्यात् । तत् इतरेतरयो नित्यमेव असत्त्व स्यात् । यथा शुक्तिकादिषु अविद्याध्यारोपिताना रजतादीना नित्यमेव अत्यन्तासत्त्वम्, तद्विपरीताना च विपरीतेषु, तद्वत् देहात्मनोरविद्ययैव इतरेतराध्यारोपणा कृता स्यात् । तत्रैव सति देहात्मनोरसत्त्व प्रसज्येत । तच्चानिष्टम्, वैनाशिकपक्षत्वात् । अथ तद्विपर्ययेण देह आत्मन्यविद्यया अध्यारोपित, देहस्यात्मनि सति असत्त्व प्रसज्येत । तच्चानिष्टम्, प्रत्यक्षादिविरोधात् । तस्माद्देहात्मानौ नाविद्यया इतरेतरस्मिन् अध्यारोपितौ । कथं तर्हि ? वशस्तम्भवन्नित्यसयुक्तौ ॥ ५५ ॥

न, अनित्यत्वपरार्थत्वप्रसङ्गात् । सहतत्वात् परार्थत्वम् अनित्यत्व च वशस्तम्भादिवदेव । किंच— यस्तु परैर्देहेन सहत कल्पित आत्मा स सहतत्वात् परार्थ । तेन असहत परोऽन्यो नित्य सिद्धस्तावत् ॥ ५६ ॥

तस्यासहतस्य देहे देहमात्रतया अध्यारोपितत्वेन असत्त्वा-नित्यत्वादिदोषप्रसङ्गो भवति । तत्र निरात्मको देह इति वैनाशिकपक्षप्राप्तिदोष स्यात् ॥ ५७ ॥

न, स्वत एवात्मन आकाशस्येव असहतत्वाभ्युपगमात्

सर्वेण असहत स च आत्मेति न निरात्मको देहादि सर्व  
स्यात् । यथा चाकाश सर्वेणासहतमिति सर्वं न निराकाश  
भवति, एवम् । तस्मान्न वैनाशिकपक्षप्राप्तिदोष स्यात् ॥५८॥

यत्पुनरुक्तम्—देहस्यात्मन्यसत्त्वे प्रत्यक्षादिविरोध स्यादि-  
ति, तन्न, प्रत्यक्षादिभि आत्मनि देहस्य सत्त्वानुपलब्धे । न  
ह्यात्मनि—कुण्डे बदरम्, क्षीरे सर्पि, तिले तैलम्, भित्तौ  
चित्रमिव च—प्रत्यक्षादिभि देह उपलभ्यते । तस्मान्न प्रत्य-  
क्षादिविरोध ॥ ५९ ॥

कथं तर्हि प्रत्यक्षाद्यप्रसिद्धात्मनि देहाध्यारोपणा, देहे चा-  
त्मारोपणा ? ॥ ६० ॥

नाय दोष, स्वभावप्रसिद्धत्वादात्मन । न हि कादाचि  
त्प्रसिद्धावेव अध्यारोपणा न नित्यसिद्धौ इति नियन्तु श-  
क्यम्, आकाशे तलमलाद्यध्यारोपणदर्शनात् ॥ ६१ ॥

किं भगवन्, देहात्मनो इतरेतराध्यारोपणा देहादिसघात-  
कृता, अथवा आत्मकृता ? इति ॥ ६२ ॥

गुरुरुवाच—यदि देहादिसघातकृता, यदि वा आत्मकृता,  
किं तत्र स्यात् ? ॥ ६३ ॥

इत्युक्त शिष्य आह—यद्यह देहादिसघातमात्र, ततो म-

माचेतनत्वात् परार्थत्वमिति न मत्कृता देहात्मनो इतरेतरा-  
ध्यारोपणा । अथाहमात्मा परोऽन्य सघातात्, चित्तिमत्त्वात्  
स्वार्थ इति मयैव चित्तिमत्ता आत्मनि अध्यारोपणा क्रियते  
सर्वानर्थबीजभूता ॥ ६४ ॥

इत्युक्तो गुरुरुवाच—अनर्थबीजभूता चेन्मिध्याध्यारोप-  
णा जानीषे, मा कार्षीस्तिर्हि ॥ ६५ ॥

नेव भगवन्, शक्नोमि न कर्तुम् । अन्येन केनचित्प्रयुक्तो-  
ऽहं न स्वतन्त्र इति ॥ ६६ ॥

न तर्हि अचित्तिमत्त्वात् स्वार्थं त्वम् । येन प्रयुक्तं अस्व-  
तन्त्रं प्रवर्तसे स चित्तिमान् स्वार्थं । सघात एव त्वम् ॥

यद्यचेतनोऽहम्, कथं सुखदुःखवेदना भवदुक्तं च जा-  
नामि ? ॥ ६८ ॥

गुरुरुवाच— किं सुखदुःखवेदनाया मदुक्ताश्चान्यस्त्वम्,  
किं वा अनन्य एव ? इति ॥ ६९ ॥

शिष्य उवाच— नाहं तावदनन्यं । कस्मात् ? यस्मात्त-  
दुभयं कर्मभूतं घटादिकमिव जानामि । यद्यनन्योऽहम्,  
तेन तदुभयं न जानीयाम्, किंतु जानामि, तस्मादनन्यं ।  
सुखदुःखवेदनाविक्रिया च स्वार्थैव प्राप्नोति, त्वदुक्तं च

स्यात्, अनन्यत्वे । न च तयो स्वार्थता युक्ता । न हि चन्दनकण्टककृते सुखदु खे चन्दनकण्टकार्थे, घटोपयोगो वा घटार्थ । तस्मात् तद्विज्ञातुर्मम चन्दनादिकृत अर्थ । अह हि ततोऽन्य समस्तमर्थं जानामि बुद्धधारूढम् ॥ ७० ॥

तं गुरुहवाच— एव तर्हि स्वार्थस्त्वं चितिमत्त्वान्न परेण प्रयुज्यसे । न हि चितिमान्परतन्त्र परेण प्रयुज्यते, चितिमतश्चितिमदर्थत्वानुपपत्ते समत्वात्प्रदीपप्रकाशयोरिव । नापि अचितिमदर्थत्व चितिमतो भवति, अचितिमतोऽचितिमत्त्वादेव स्वार्थसबन्धानुपपत्ते । नापि अचितिमतो अन्योन्यार्थत्व दृष्टम् । न हि काष्ठकुड्ये अन्योन्यार्थं कुर्वाते ॥ ७१ ॥

ननु चितिमत्त्वे समेऽपि भृत्यस्वामिनो अन्योन्यार्थत्व दृष्टम् ॥ ७२ ॥

नैवम्, अग्नोरुष्णप्रकाशवत्तव चितिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् । प्रदर्शितश्च दृष्टान्त प्रदीपप्रकाशयोरिति । तत्रैव सति स्वबुद्धधारूढमेव सर्वमुपलभसे अग्न्युष्णप्रकाशतुल्येन कूटस्थानित्यचैतन्यस्वरूपेण । यदि चैवमात्मन सर्वदा निर्विशेषत्वमुपगच्छसि, किमित्यूचिवान् 'सुषुप्ते विश्रम्य विश्रम्य जाग्रत्स्वप्रयो दु खमनुभवामि, किमयमेव मम स्वभाव किं वा नैमि-

त्तिक ' इति च । किमसौ व्यामोहोऽपगत , किं वा न ?

इत्युक्तं शिष्य आह— भगवन्, अपगत त्वत्प्रसादात् । किंतु मम कूटस्थताया संशय । कथम् ? शब्दादीना स्वत - सिद्धिर्नास्ति, अचेतनत्वात्, शब्दाद्याकारप्रत्ययोत्पत्तेस्तु ते-षाम् । प्रत्ययानामितरेतरव्यावृत्तविशेषणाना नीलपीताद्या कारवता स्वत सिद्धयसम्भवात् । तस्माद्बाह्याकारनिमित्तत्व गम्यते इति बाह्याकारवत् शब्दाद्याकारत्वसिद्धि । तथा प्रत्ययानामपि अहप्रत्ययालम्बनवस्तुभेदाना सहतत्वात् अचै-तन्योपपत्ते । स्वार्थत्वासम्भवात् स्वरूपव्यतिरिक्तप्राहकप्रा-ह्यत्वेन सिद्धि शब्दादिवदेव । असहतत्वे सति चैतन्यात्मक-त्वात् स्वार्थोऽपि अहप्रत्ययाना नीलपीताद्याकाराणामुपलब्धेति विक्रियावानेव, कथं कूटस्थ इति संशय ॥ ७४ ॥

त गुरुवाच—न युक्तस्तव संशय , यतस्तेषा प्रत्ययाना नियमेन अशेषत उपलब्धेरेव अपरिणामित्वात् कूटस्थत्वसि-द्धौ निश्चयहेतुमेव अशेषचित्तप्रचारोपलब्धि संशयहेतुमात्थ । यदि हि तव परिणामित्व स्यात्, अशेषस्वविषयचित्तप्रचारो-पलब्धिर्न स्यात् चित्तस्यैव स्वविषये यथा चेन्द्रियाणा स्ववि-षयेषु । न च तथा आत्मनस्तव स्वविषयैकदेशोपलब्धि । अत कूटस्थतैव तवेति ॥ ७५ ॥

तत्राह—उपलब्धिर्नाम धात्वर्थो विक्रियैव, उपलब्धु कूट-  
स्थात्मता चेति विरुद्धम् ॥ ७६ ॥

न, धात्वर्थविक्रियायाम् उपलब्ध्युपचारात् । यो हि बौद्ध  
प्रत्यय स धात्वर्थो विक्रियात्मक आत्मन उपलब्ध्याभासफ-  
लावसान इति उपलब्धिशब्देन उपचर्यते, यथा छिदिक्रिया  
द्वैधीभावफलावसानेति धात्वर्थत्वेनोपचर्यते तद्वत् ॥ ७७ ॥

इत्युक्त शिष्य आह—ननु भगवन्, मम कूटस्थत्वप्रति-  
पादन प्रति असमर्थो दृष्टान्त । कथम्? छिदि छेद्यविक्रिया-  
वसाना उपचर्यते यथा धात्वर्थत्वेन, तथा उपलब्धिशब्दोपच-  
रितोऽपि धात्वर्थो बौद्धप्रत्यय आत्मन उपलब्धिविक्रियाव-  
सानश्चेत्, नात्मन कूटस्थता प्रतिपादयितु समर्थ ॥ ७८ ॥

गुरुरुवाच—सत्यमेव स्यात्, यदि उपलब्ध्युपलब्धो विशे-  
ष । नित्योपलब्धिमात्र एव हि उपलब्धा । न तु तार्किक  
समय इव अन्या उपलब्धि अन्य उपलब्धा च ॥ ७९ ॥

ननूपलब्धिफलावसानो धात्वर्थ कथमिति ॥ ८० ॥

उच्यते शृणु, उपलब्ध्याभासफलावसान इत्युक्तम् । किं  
न श्रुत तत् त्वया? न त्वात्मा विक्रियोत्पादनावसान इति  
मयोक्तम् ॥ ८१ ॥

शिष्य आह—कथं तर्हि कूटस्थे मयि अशेषस्वविषयचित्तप्रचारोपलब्धत्वमित्यात्थ ? ॥ ८२ ॥

त गुरुरुवाच—सत्यमेवावोचम्, तेनैव कूटस्थतामब्रव तव ॥ ८३ ॥

यद्येव भगवन्, कूटस्थनित्योपलब्धिस्वरूपे मयि शब्दाद्याकारबौद्धप्रत्ययेषु च मत्स्वरूपोपलब्ध्याभासफलावसानवत्सु उत्पद्यमानेषु कस्त्वपराधो मम ? ॥ ८४ ॥

सत्यम्, नास्त्यपराध, किंतु अविद्यामात्रस्त्वपराध इति प्रागेवावोचम् ॥ ८५ ॥

यदि भगवन्, सुषुप्त इव मम विक्रिया नास्ति, कथं स्वप्रजागरिते ? ॥ ८६ ॥

त गुरुरुवाच—किं त्वनुभूयेते त्वया सततम् ॥ ८७ ॥

शिष्य उवाच—बाढमनुभवामि, किंतु विच्छिद्य विच्छिद्य, न तु सततम् ॥ ८८ ॥

गुरुरुवाच—तर्ह्यागन्तुके त्वेते, न तवात्मभूते । यदि तवात्मभूते चैतन्यस्वरूपवत् स्वतः सिद्धे सतते एव स्याताम् । किंच, स्वप्रजागरिते न तव आत्मभूते, व्यभिचारित्वात् वस्त्रादिवत् । न हि यस्य यत् स्वरूपं तत् तद्व्यभिचारि दृष्टम् ।

स्वप्नजागरिते तु चैतन्यमात्रत्वात् व्यभिचरत । सुषुप्ते चेत्  
स्वरूप व्यभिचरेत् तत् नष्ट नास्तीति वा बाध्यमेव स्यात्,  
आगन्तुकानामतद्धर्माणामुभयात्मकत्वदर्शनात्, यथा धनव-  
ह्नादीना नाशो दृष्ट, स्वप्नभ्रान्तिलब्धाना तु अभावो  
दृष्ट ॥ ८९ ॥

ननु एव भगवन्, चैतन्यस्वरूपमपि आगन्तुक प्राप्तम्,  
स्वप्नजागरितयोरिव सुषुप्ते अनुपलब्धे । अचैतन्यस्वरूपो  
वा स्यामहम् ॥ ९० ॥

न, पश्य, तदनुपपत्ते । चैतन्यस्वरूप चेदागन्तुक पश्यसि,  
पश्य, नैतत् वर्षशतेनापि उपपत्त्या कलयितुं शक्नुमो वयम्,  
अन्यो वाचैतन्योऽपि । तस्य सहतत्वात् पारार्थ्यम् अनेकत्व  
नाशित्वं च न केनचिदुपपत्त्या वारयितुं शक्यम्, अस्वा-  
र्थश्च स्वत सिद्धयभावादित्यवोचाम । चैतन्यस्वरूपस्य तु  
आत्मन स्वत सिद्धे अन्यानपेक्षत्व न केनचित् वारयितुं  
शक्यम्, अव्यभिचारात् ॥ ९१ ॥

ननु व्यभिचारो दर्शितो मया सुषुप्ते न पश्यामीति ॥९२॥

न, व्याहृतत्वात् । कथं व्याघात ? पश्यतस्तव न पश्यामीति  
व्याहृत वचनम् । न हि कदाचित् भगवन्, सुषुप्ते मया चैत



न्यमन्यद्वा किञ्चित् दृष्टम् । पश्यन् तर्हि सुषुप्ते त्वम्, यस्मान् दृष्टमेव प्रतिषेधसि, न दृष्टिम् । या तव दृष्टि तच्चैतन्यमिति मयोक्तम् । यथा त्व विद्यमानया न किञ्चित् दृष्टमिति प्रतिषेधसि सा दृष्टि त्वच्चैतन्यम् । तर्हि सर्वत्र अव्यभिचारात् कूटस्थानित्यत्व सिद्ध स्वत एव, न प्रमाणापेक्षम् । स्वत सिद्धस्य हि प्रमातु अन्यस्य प्रमेयस्य परिच्छित्तिं प्रति प्रमाणापेक्षा । या तु अन्या नित्या परिच्छित्तिरपेक्ष्यते अन्यस्य अपरिच्छित्तिरूपस्य परिच्छेदाय, सा हि नित्यैव कूटस्था स्वयज्योति स्वभावा । आत्मनि प्रमाणत्वे प्रमातृत्वे वा न ता प्रति प्रमाणापेक्षा, तत्स्वभावत्वात् । यथा प्रकाशनमुष्णत्व वा लोहोदकादिषु परत अपेक्ष्यते अग्न्यादित्यादिभ्य, अतस्त्वभावत्वात्, न अग्न्यादित्यादीना तदपेक्षा, सदा तत्स्वभावत्वात् ॥

अनित्यत्वे एव प्रमा स्यात्, न नित्यत्वे इति चेत् ॥ ९४ ॥

न, अवगतेर्नित्यत्वानित्यत्वयो विशेषानुपपत्ते । न हि अवगते प्रमात्वे अनित्या अवगति प्रमा, न नित्या इति विशेष अवगम्यते ॥ ९५ ॥

नित्याया प्रमातु अपेक्षाभाव, अनित्याया तु यन्नान्तरित्वात् अवगति अपेक्ष्यत इति विशेष ह्यादिति चेत् ॥ ९६ ॥

सिद्धा तर्हि आत्मन प्रमातु स्वत सिद्धि प्रमाणनिरपे  
क्षतयैवेति ॥ ९७ ॥

अभावेऽपि अपेक्षाभाव , नित्यत्वात् इति चेत् ॥ ९८ ॥

न, अवगतेरेव आत्मनि सद्भावादिति परिहृतमेतत् । प्रमा-  
तुश्चेन् प्रमाणापेक्षा सिद्धि कस्य प्रमित्सा स्यात् । यस्य प्रमि-  
त्सा स एव प्रमाता अभ्युपगम्यते । तदीया च प्रमित्सा प्रमे-  
यविषयैव, न प्रमातृविषया, प्रमातृविषयत्वे अनवस्थाप्रसङ्गात्  
प्रमातु तदिच्छायाश्च तस्याप्यन्य प्रमाता तस्याप्यन्य इति,  
एवमेव इच्छाया प्रमातृविषयत्वे । प्रमातु आत्मन अव्यव-  
हितत्वाच्च प्रमेयत्वानुपपत्ति । लोके हि प्रमेय नाम प्रमातु  
इच्छास्मृतिप्रयत्नप्रमाणजन्मव्यवहित सिध्यति, नान्यथा,  
अवगति प्रमेयविषया दृष्टा । न च प्रमातु प्रमाता स्वस्य  
स्वयमेव केनचित् व्यवहित कल्पयितु शक्य इच्छादीनाम  
न्यतमेनापि । स्मृतिश्च स्मर्तव्यविषया, न स्मर्तृविषया । तथा-  
इच्छाया इष्टविषयत्वमेव, न इच्छावद्विषयत्वम् । स्मर्त्रिच्छाव-  
द्विषयत्वेऽपि हि उभयो अनवस्था पूर्ववत् अपरिहार्या स्यात् ॥

ननु प्रमातृविषयावगत्यनुत्पत्तौ अनवगत एव प्रमाता  
स्यादिति चेत् ॥ १०० ॥

न, अवगन्तु अवगते अवगन्तव्यविषयत्वात् । अवगन्तु-विषयत्वे चानवस्था पूर्ववत्स्यात् । अवगतिश्चात्मनि कूटस्थानित्यात्मज्योति अन्यत अनपेक्षेव सिद्धा, अग्न्यादित्याद्युष्ण-प्रकाशवदिति पूर्वमेव प्रसाधितम् । अवगते चैतन्यात्मज्योतिष स्वात्मनि अनित्यत्वे आत्मन स्वार्थतानुपपत्ति । कार्यकरणसघातवत् सहतत्वात् पारार्थ्यं दोषवच्च च अवोचाम । कथम् ? चैतन्यात्मज्योतिष स्वात्मनि अनित्यत्वे स्मृत्यादिव्यवधानात् सान्तरत्वम् । ततश्च तस्य चैतन्यज्योतिष प्रागुत्पत्ते प्रध्वसाच्चोर्ध्वमात्मन्येवाभावात् चक्षुरादीनामिव सहतत्वात् पारार्थ्यं स्यात् । यदा च तत् उत्पन्नम् आत्मनि विद्यते, न तदा आत्मन स्वार्थत्वम् । तद्भावाभावापेक्षा हि आत्मानात्मनो स्वार्थत्वपरार्थत्वसिद्धि । तस्मात् आत्मन अन्यनिरपेक्षमेव नित्यचैतन्यज्योतिष्ट्वं सिद्धम् ॥

ननु एव सति असति प्रमाश्रयत्वे, कथं प्रमातु प्रमातृत्वम् ? ॥ १०० ॥

उच्यते— प्रमाया नित्यत्वे अनित्यत्वे च रूपविशेषाभावात् । अवगतिर्हि प्रमा । तस्या स्मृतीच्छादिपूर्विकाया अनित्याया , कूटस्थानित्याया वा, न स्वरूपविशेषो विद्यते,

यथा धात्वर्थस्य तिष्ठत्यादे फलस्य गत्यादिपूर्वकस्य अनित्यस्य अपूर्वस्य नित्यस्य वा रूपविशेषो नास्तीति तुल्यो व्यपदेशो दृष्ट 'तिष्ठन्ति मनुष्या' 'तिष्ठन्ति पर्वता' इत्यादि, तथा नित्यावगतिस्वरूपेऽपि प्रमातरि प्रमातृत्वव्यपदेशो न विरुध्यते फलसामान्यादिति ॥ १०३ ॥

अत्राह शिष्य — नित्यावगतिस्वरूपस्य आत्मन अवि-  
क्रियत्वात् कार्यकरणै असह्य तक्षादीनामिव वास्यादिभि  
कर्तृत्व नोपपद्यते । असहतस्वभावस्य च कार्यकरणोपादाने  
अनवस्था प्रसज्येत । तक्षादीना तु कार्यकरणै नित्यमेव  
सहतत्वमिति वास्याद्युपादाने नानवस्था स्यादिति ॥ १०४ ॥

इह तु असहतस्वभावस्य करणानुपादाने कर्तृत्व नोपपद्यत  
इति करणमुपादेयम्, तदुपादानमपि विक्रियैवेति तत्कर्तृत्वे  
करणान्तरमुपादेयम्, तदुपादानेऽपि अन्यदिति प्रमातु स्वा-  
तन्त्र्ये अनवस्था अपरिहार्त्या स्यादिति । न च क्रियैव आ-  
त्मान कारयति, अनिर्वर्तिताया स्वरूपाभावान् । अथ अन्यत्  
आत्मानमुपेत्य क्रिया कारयतीति चेत्, न, अन्यस्य स्वत-  
सिद्धत्वाविषयत्वाद्यनुपपत्ते । न हि आत्मन अन्यत् अचेतन  
वस्तु स्वप्रमाणक दृष्टम् । शब्दादि सर्वमेव अवगतिफलावसा-

नप्रत्ययप्रमित सिद्ध स्यात् । अवगतिश्चेत् आत्मनोऽन्यस्य स्यात् सोऽपि आत्मैव असहत् स्वार्थं स्यात्, न परार्थं । न च देहेन्द्रियविषयाणां स्वार्थताम् अवगन्तुं शक्नुमः अवगत्यवसानप्रत्ययापेक्षसिद्धिदर्शनात् ॥ १०५ ॥

ननु देहस्यावगतौ न कश्चित् प्रत्यक्षादिप्रत्ययान्तरमपेक्षते ॥ १०६ ॥

बाढम्, जाग्रति एव स्यात् । मृतिसुषुप्तयोस्तु देहस्यापि प्रत्यक्षादिप्रमाणापेक्षैव सिद्धिः । तथैव इन्द्रियाणाम् । बाह्या एव हि शब्दादयो देहेन्द्रियाकारपरिणता इति प्रत्यक्षादिप्रमाणापेक्षैव हि सिद्धिः । सिद्धिरिति च प्रमाणफलमवगतिमवोचाम, सा च अवगति कूटस्था स्वयसिद्धात्मज्योतिस्वरूपेति च ॥ १०७ ॥

अत्राह चोदक — अवगति प्रमाणानां फल कूटस्थानित्यात्मज्योतिस्वरूपेति च विप्रतिषिद्धम् ।

इत्युक्तवन्तमाह — न विप्रतिषिद्धम् । कथं तर्ह्यवगते फलत्वम् ? तत्त्वोपचारात् । कूटस्था नित्यापि सती प्रत्यक्षादिप्रत्ययान्ते लक्ष्यते तादर्थ्यात् । प्रत्यक्षादिप्रत्ययस्य अनित्यत्वे अनित्येव भवति । तेन प्रमाणानां फलमित्युपचर्यते ॥

यद्येव भगवन्, कूटस्थनित्यावगति आत्मज्योति स्वरूपैव स्वयसिद्धा, आत्मनि प्रमाणनिरपेक्षत्वात्, ततोऽन्यत् अचेतन सह्यकारित्वात् परार्थम् । येन च सुखदुःखमोह हेतुप्रत्ययावगतिरूपेण पारार्थ्यम्, तेनैव स्वरूपेण अनात्मन अस्तित्व नान्येन रूपान्तरेण । अतो नास्तित्वमेव परमार्थत । यथा हि लोके रज्जुसर्पमरीच्युदकादीना तदवगतिव्यतिरेकेण अभावो दृष्ट, एव जाग्रत्स्वप्नद्वैतभावस्यापि तदवगतिव्यतिरेकेण अभावो युक्त । एवमेव परमार्थत भगवन्, अवगते आत्मज्योतिष नैरन्तर्यभावात् कूटस्थनित्यता अद्वैतभावश्च, सर्वप्रत्ययभेदेषु अव्यभिचारात् । प्रत्ययभेदाश्च अवगतिं व्यभिचरन्ति । यथा स्वप्ने नीलपीताद्याकारभेदरूपा प्रत्यया तदवगतिं व्यभिचरन्त परमार्थतो न सन्तीत्युच्यन्ते, एव जाग्रत्यपि । नीलपीतादिप्रत्ययभेदा तामेवावगतिं व्यभिचरन्त असत्यरूपा भवितुम् अर्हन्ति । तस्याश्च अवगतेरन्य अवगन्ता नास्तीति न स्वेन स्वरूपेण स्वयमुपादातु हातु वा शक्यते, अन्यस्य च अभावात् ॥ १०९ ॥

तथैवेति । एषा अविद्या यन्निमित्त ससारो जाग्रत्स्वप्न-लक्षण । तस्या अविद्याया विद्या निवार्तिका । इत्येव त्वम्

अभय प्राप्नोषि, नात पर जाग्रत्स्वप्नदु खमनुभविष्यसि ।  
ससारदु खान्मुक्तोऽसीति ॥ ११० ॥

ओमिति ॥ १११ ॥

अवगति समाप्ता ॥

### परिसंख्यानप्रकरणम् ।

मुमुक्षूणाम् उपात्तपुण्यापुण्यक्षपणपराणामपूर्वानुपचयार्थि-  
ना परिसंख्यानमिदमुच्यते— अविद्याहेतवो दोषा वाङ्मन-  
कायप्रवृत्तिहेतव , प्रवृत्तेश्च इष्टानिष्टमिश्रफलानि कर्माणि उप-  
चीयन्ते इति तन्मोक्षार्थम् ॥ ११२ ॥

तत्र शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाना विषयाणा श्रोत्रादिप्राह्य-  
त्वात् स्वात्मनि परेषु वा विज्ञानाभाव । तेषामेव परिणताना  
यथा लोष्टादीनाम् । श्रोत्रादिद्वारैश्च ज्ञायन्ते । येन च  
ज्ञायन्ते स ज्ञातृत्वात् अतज्जातीय । ते हि शब्दादय  
अन्योन्यससर्गित्वात् जन्मवृद्धिविपरिणामापक्षयनाशसयोग-  
वियोगाविर्भावतिरोभावविकारविकारिक्षेत्रबीजाद्यनेकधर्माण ,  
सामान्येन च सुखदुःखाद्यनेकधर्माण तद्विज्ञातृत्वादेव तद्वि-  
ज्ञाता सर्वशब्दादिधर्मविलक्षण ॥ ११३ ॥

तत्र शब्दादिभि उपलभ्यमानै पीड्यमानो विद्वान् एव  
परिसचक्षीत ॥ ११४ ॥

शब्दस्तु ध्वनिसामान्यमात्रेण वा विशेषधर्मेर्वा षड्जादि-  
भि प्रियै स्तुत्यादिभि इष्टै अनिष्टैश्च असत्यबीभत्सपरिभवा-  
क्लोशादिभि वचनैर्वा मा दृक्स्वभावमससर्गिणमविक्रियमच-  
लमनिधनमभयमत्यन्तसूक्ष्ममविषय गोचरीकृत्य स्पष्टु नैवा-  
र्हति, अससर्गित्वादेव माम् । अत एव न शब्दनिमित्ता हानि  
वृद्धिर्वा । अतो मा किं करिष्यति स्तुतिनिन्दादिप्रियाप्रियत्वा-  
दिलक्षण शब्द । अविवेकिन हि शब्दमात्मत्वेन गत प्रिय  
शब्दो वर्धयेत् अप्रियश्च क्षपयेत्, अविवेकित्वात् । न तु मम  
विवेकिनो वालाग्रमात्रमपि कर्तुमुत्सहते इति । एवमेव स्पर्श-  
सामान्येन तद्विशेषैश्च शीतोष्णमृदुकर्कशादिज्वरोदरशूलादिल-  
क्षणैश्च अप्रियै प्रियैश्च कैश्चित् शरीरसमवायिभि बाह्यागन्तु-  
कनिमित्तैश्च न मम काचित् विक्रिया वृद्धिहानिलक्षणा अस्प-  
र्शत्वात् क्रियते, व्योम्न इव मुष्टिघातादिभि । तथा रूपसामा-  
न्येन तद्विशेषैश्च प्रियाप्रियै स्त्रीव्यञ्जनादिलक्षणै अरूपत्वात् न  
मम काचित् हानि वृद्धिर्वा क्रियते । तथा रससामान्येन तद्वि-  
शेषैश्च प्रियाप्रियै मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायै मूढबुद्धिभि



परिगृहीतै अरसात्मकस्य मम न काचित् हानि वृद्धिर्वा क्रियते । तथा गन्धसामान्येन तद्विशेषै प्रियाप्रियै पुष्पाद्यनुलेपनादिलक्षणै अगन्धात्मकस्य न मम काचित् हानि वृद्धिर्वा क्रियते, 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्यय तथारस नित्यमगन्धवच्च यत्' इति श्रुते ॥ ११५ ॥

किं च— ये एव बाह्या शब्दादय ते शरीराकारेण सस्थिता, तत्परिमाणरूपैस्तद्ग्राहकैश्च श्रोत्राद्याकारै, अन्त करणद्वयतद्विषयाकारेण च, तेषामन्योन्यससर्गित्वात् सह-तत्वाच्च सर्वक्रियासु । तत्रैव सति विदुषो न मम कश्चित् शत्रु मित्रम् उदासीनो वा अस्ति । तत्र यदि कश्चित् मिथ्याज्ञानाभिमानेन प्रियमप्रिय वा प्रयुयुक्षेत क्रियाफल-लक्षण तन्मृषैव प्रयुयुक्षते स, तस्याविषयत्वान्मम, 'अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम्' इति स्मृते । तथा सर्वेषा पञ्चानामपि भूतानामविकार्य, अविषयत्वात्, 'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम्' इति स्मृते । यापि शरीरेन्द्रियसस्थानमात्रमुपलक्ष्य मद्भक्ताना विपरीताना च प्रियाप्रियादिप्रयुयुक्षा, तज्जा च वर्माधर्मादिप्राप्ति, सा तेषामेव, न तु मयि अजरे अमृते अभये, 'नैन कृताकृते तपत' 'न वर्धते कर्मणा नो

कनीयान् ' 'सबाह्याभ्यन्तरो ह्यज ' 'न लिप्यते लोकदु  
 खेन बाह्य ' इत्यादिश्रुतिभ्य । अनात्मवस्तुनश्च असत्त्व परमो  
 हेतु । आत्मनश्च अद्वयत्वे, द्वयस्य असत्त्वात्, यानि  
 सर्वाणि उपनिषद्वाक्यानि विस्तरश समीक्षितव्यानि समी-  
 क्षितव्यानि ॥ ११६ ॥

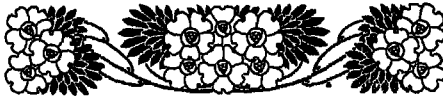
इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य

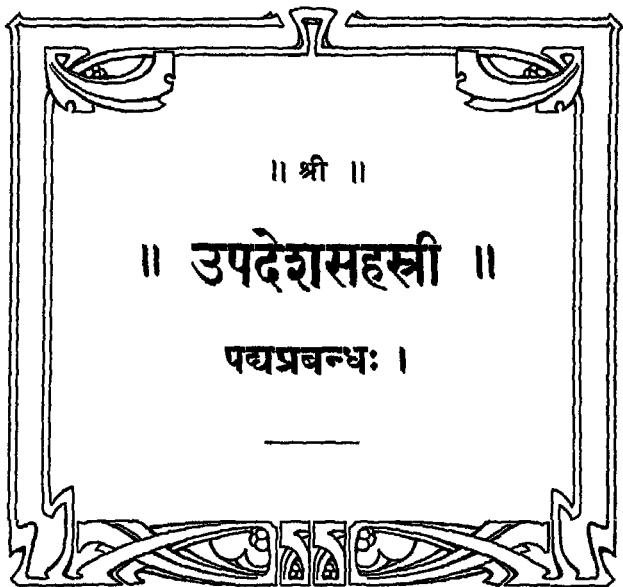
श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य

श्रीमच्छंकरभगवत कृतौ

उपदेशसहस्रया

गद्यप्रबन्ध समाप्त ॥





॥ श्री ॥

॥ उपदेशसहस्री ॥

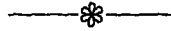
पद्यप्रबन्धः ।

---



॥ श्री ॥

# ॥ उपदेशसहस्री ॥



उपोद्धातप्रकरणम् ॥

चैतन्य सर्वग सर्व सर्वभूतगुहाशयम् ।  
यत्सर्वविषयातीत नस्मै सर्वविदे नम ॥ १ ॥

समापय्य क्रिया सर्वा दाराग्न्याधानपूर्विका ।  
ब्रह्मविद्यामथेदानीं वक्तु वेद प्रचक्रमे ॥ २ ॥

कर्माणि देहयोगार्थं देहयोगे प्रियाप्रिये ।  
ब्रुवे स्याता ततो रागो द्वेषश्चैव तत क्रिया ॥ ३ ॥

धर्माधर्मौ ततोऽहस्य देहयोगस्तथा पुन ।  
एव नित्यप्रवृत्तोऽय ससारश्चक्रवद्दृशम् ॥ ४ ॥

अज्ञान तस्य मूल स्यादिति तद्ज्ञानमिष्यते ।  
ब्रह्मविद्यात आरब्धा ततो नि श्रेयस भवेत् ॥ ५ ॥

विद्यैवाज्ञानहानाय न कर्माप्रतिकूलत ।  
नाज्ञानस्याप्रहाणे हि रागद्वेषक्षयो भवेत् ॥ ६ ॥

रागद्वेषक्षयाभावे कर्म दोषोद्भव ध्रुवम् ।  
तस्मान्नि श्रेयसार्थाय विद्यैवान्न विधीयते ॥ ७ ॥

ननु कर्म तथा नित्य कर्तव्य जीवने सति ।  
विद्याया सहकारित्व मोक्ष प्रति हि तद्भजेत् ॥ ८ ॥

यथा विद्या तथा कर्म चोदितत्वाविशेषत ।  
प्रत्यवायस्मृतेश्चैव कार्य कर्म मुमुक्षुभि ॥ ९ ॥

ननु ध्रुवफला विद्या नान्यत्किञ्चिदपेक्षते ।  
नाग्निष्टोमो यथैवान्यद्भुवकार्योऽप्यपेक्षते ॥ १० ॥

तथा ध्रुवफला विद्या कर्म नित्यमपेक्षते ।  
इत्येव केचिदिच्छन्ति न कर्म प्रतिकूलत ॥ ११ ॥

विद्याया प्रतिकूल हि कर्म स्यात्साभिमानत ।  
निर्विकारात्मबुद्धिश्च विद्येतीह प्रकोर्तिता ॥ १२ ॥

अह कर्ता ममेद स्यादिति कर्म प्रवर्तते ।  
 वस्त्वधीना भवेद्विद्या कर्त्रधीनो भवेद्विधि ॥ १३ ॥  
 कारकाण्युपमृद्नाति विद्या बुद्धिमिवोषरे ।  
 तत्सत्यमतिमादाय कर्म कर्तुं व्यवस्यति ॥ १४ ॥  
 विरुद्धत्वात् शक्यं कर्म कर्तुं न विद्यया ।  
 सहैव विदुषा तस्मात्कर्म हेयं मुमुक्षुणा ॥ १५ ॥  
 देहाद्यैरविशेषेण देहिनो ग्रहणं निजम् ।  
 प्राणिना तद्विद्योत्थं तावत्कर्मविधिर्भवेत् ॥ १६ ॥  
 नेति नेतीति देहादीनपोह्यात्मावशेषित ।  
 निर्विशेषात्मभानार्थं तेनाविद्या निवर्तिता ॥ १७ ॥  
 निवृत्ता सा कथं भूय प्रसूयेत प्रमाणत ।  
 असत्येवाविशेषेऽपि प्रत्यगात्मनि केवले ॥ १८ ॥  
 न चेद्भूय प्रसूयेत कर्ता भोक्तेति धी कथम् ।  
 सदस्मीति च विज्ञाने तस्माद्विद्यासहायिका ॥ १९ ॥  
 अत्यरेचयदित्युक्तो न्यासः श्रुत्यात् एव हि ।  
 कर्मभ्यो मानसान्तेभ्य एतावदिति वाजिनाम् ॥ २० ॥

अमृतत्व श्रुत तस्मात्त्याज्य कर्म मुमुक्षुभि ।  
अग्निष्टोमवदित्युक्त तत्रेदमभिधीयते ॥ २१ ॥

नैककारकसाध्यत्वात्फलान्यत्वाच्च कर्मण ।  
विद्या तद्विपरीतातो दृष्टान्तो विषमो भवेत् ॥ २२ ॥

कृष्यादिवत्फलार्थत्वादन्यकर्मोपबृहणम् ।  
अग्निष्टोमस्त्वपेक्षेत विद्यान्यत्किमपेक्षते ॥ २३ ॥

प्रत्यवायस्तु तस्यैव यस्याहकार इष्यते ।  
अहकारफलार्थित्वे विद्येते नात्मवेदिन ॥ २४ ॥

तस्मादज्ञानहानाय ससारविनिवृत्तये ।  
ब्रह्मविद्याविधानाय प्रारब्धोपनिपत्त्विष्यम् ॥ २५ ॥

सदेरुपनिपूर्वस्य क्विपि चोपनिषद्भवेत् ।  
मन्दीकरणभावाच्च गर्भादे शातनात्तथा ॥ २६ ॥

### आत्मज्ञानोत्पत्तिप्रकरणम् ॥

प्रतिषेद्धुमशक्यत्वाच्चेति नेतीति शेषितम् ।

इद नाहमिद नाहमित्यद्धा प्रतिपद्यते ॥ १ ॥



अहधीरिदमात्मोत्था वाचारम्भणगोचरा ।  
निषिद्धात्मोद्भवत्वात्सा न पुनर्मानता व्रजेत् ॥ २ ॥  
पूर्वबुद्धिमबाधित्वा नोत्तरा जायते मति ।  
दृशिरेक स्वय सिद्ध फलत्वात्स न बाध्यते ॥ ३ ॥  
इद वनमतिक्रम्य शोकमोहादिदूषितम् ।  
वनाद्गान्धारको यद्वत्स्वात्मान प्रतिपद्यते ॥ ४ ॥

### ईश्वरात्मप्रकरणम् ॥

ईश्वरश्चेदनात्मा स्यान्नासावस्मीति धारयेत् ।  
आत्मा चेदीश्वरोऽस्मीति विद्या सान्यनिवर्तिका ॥ १ ॥  
आत्मनोऽन्यस्य चेद्धर्मा अस्थूलत्वादयो मता ।  
अज्ञेयत्वेऽस्य किं तै स्यादात्मत्वे त्वन्यधीह्वति ॥  
मिथ्याध्यासनिषेधार्थं ततोऽस्थूलादि गृह्यताम् ।  
परत्र चेन्निषेधार्थं शून्यतावर्णनं हि तत् ॥ ३ ॥  
बुभुत्सोर्यदि चान्यत्र प्रत्यगात्मन इष्यते ।  
अप्राणो ह्यमना शुभ्र इति चानर्थक वच ॥ ४ ॥

### तत्त्वज्ञानस्वभावप्रकरणम् ॥

अह प्रत्ययबीज यदहप्रत्ययवत्स्थितम् ।  
 नाहप्रत्ययवहृद्यष्ट कथ कर्म प्ररोहति ॥ १ ॥  
 दृष्टवच्चेत्प्ररोह स्त्रान्नान्यकर्मा स इष्यते ।  
 नन्निरोधे कथ तत्स्यात्पृच्छामो वस्तदुच्यताम् ॥  
 देहाद्यारम्भसामर्थ्याज्ज्ञान सद्विषय त्वयि ।  
 अभिभूय फल कुर्यात्कर्मान्ते ज्ञानमुद्भवेत् ॥ ३ ॥  
 आरब्धस्य फले ह्येते भोगो ज्ञान च कर्मण ।  
 अविरोधस्तयोर्युक्तो वैधर्म्य चेतस्य तु ॥ ४ ॥  
 देहात्मज्ञानवज्ज्ञान देहात्मज्ञानबाधकम् ।  
 आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते ।  
 तत् सर्वमिद सिद्ध प्रयोगोऽस्माभिरीरित ॥ ५ ॥

### बुद्धयपराधप्रकरणम् ॥

मूलाशङ्को यथोदङ्को नाग्रहीदमृत यथा ।  
 कर्मनाशभयाज्जन्तोरात्मज्ञानाग्रहस्तथा ॥ १ ॥

बुद्धिस्थश्चलतीघात्मा ध्यायतीव च दृश्यते ।  
नौगतस्य यथा वृक्षास्तद्वत्ससारविभ्रम ॥ २ ॥

नौस्थश्च प्रातिलोभ्येन नगाना गमन यथा ।  
आत्मन ससृतिस्तद्वद्ब्रूयायतीवेति हि श्रुति ॥ ३ ॥

चैतन्यप्रतिबिम्बेन व्याप्तो बोधो हि जायते ।  
बुद्धे शब्दादिनिर्भासस्तेन मोमुह्यते जगत् ॥ ४ ॥

चैतन्यभास्यताहमस्तादर्थ्यं च तदस्य यत् ।  
इदमशप्रहाणे न पर सोऽनुभवो भवेत् ॥ ५ ॥

### विशेषापोहप्रकरणम् ॥

छित्त्वा त्यक्तेन हस्तेन स्वय नात्मा विशेष्यते ।  
तथा शिष्टेन सर्वेण येन येन विशेष्यते ॥ १ ॥

तस्मात्त्यक्तेन हस्तेन तुल्य सर्व विशेषणम् ।  
अनात्मत्वेन तस्माज्ज्ञो मुक्त सर्वैर्विशेषणै ॥ २ ॥

विशेषणमिद सर्व साध्वलकरण यथा ।  
अविद्यास्तमत सर्वं ज्ञात आत्मन्यसद्भवेत् ॥ ३ ॥

ज्ञातैवात्मा सदा ग्राह्यो ज्ञेयमुत्सृज्य केवल ।  
अहमित्यपि यद्ग्राह्य व्यपेताङ्गसम हि तत् ॥ ४ ॥

यावान्स्यादिदमशो य स स्वतोऽन्यो विशेषणम् ।  
विशेषप्रक्षयो यत्र सिद्धो ज्ञश्चित्रगुर्यथा ॥ ५ ॥

इदमशोऽहमित्यत्र त्याज्यो नात्मेति पण्डितै ।  
अह ब्रह्मेति शिष्टाशो भूतपूर्वगतेर्भवेत् ॥ ६ ॥

### बुद्ध्यारूढप्रकरणम् ॥

बुद्ध्यारूढ सदा सर्वं दृश्यते यत्र तत्र वा ।  
मया तस्मात्पर ब्रह्म सर्वज्ञश्चास्मि सर्वग ॥ १ ॥

यथात्मबुद्धिचाराणा साक्षी तद्वत्परेष्वपि ।  
नैवापोढु न चादातु शक्यस्तस्मात्परो ह्यहम् ॥ २ ॥

विकारित्वमशुद्धत्व भौतिकत्व न चात्मन ।  
अशेषबुद्धिसाक्षित्वाद्बुद्धिवन्नाल्पवेदना ॥ ३ ॥

मणौ प्रकाश्यते यद्वद्रक्ताद्याकारतातपे ।  
मयि सदृश्यते सर्वमातपेनेव तन्मया ॥ ४ ॥

बुद्धौ दृश्य भवेद्बुद्धौ सत्या नास्ति विपर्यये ।  
द्रष्टा यस्मात्सदा द्रष्टा तस्माद्भूत न विद्यते ॥ ५ ॥

अविवेकात्पराभाव यथा बुद्धिरवेत्तथा ।  
विवेकात्तु परादन्य स्वय चापि न विद्यते ॥ ६ ॥

### मतिविलापनप्रकरणम् ॥

चित्ति स्वरूप स्वत एव मे मते  
रसादियोगस्तव मोहकारित ।  
अतो न किञ्चित्तव चेष्टितेन मे  
फल भवेत्सर्वविशेषहानत ॥ १ ॥

विमुच्य मायामयकार्यतामिह  
प्रशान्तिमायाह्यसदीहितात्सदा ।  
अह पर ब्रह्म सदा विमुक्तिम  
त्तथाजमेक द्वयवर्जित यत ॥ २ ॥

सदा च भूतेषु समोऽस्मि केवलो  
यथा च ख सर्वगमक्षर शिवम् ।

निरन्तर निष्कलमक्रिय पर  
 नतो न मेऽस्तीह फल तवेहितै ॥ ३ ॥

अह ममैको न मदन्यदिष्यते  
 तथा न कखाप्यहमस्म्यसङ्गत ।  
 असङ्गरूपोऽहमतो न मे त्वया  
 कृतेन कार्यं तव चाद्भ्यत्वत् ॥ ४ ॥

फले च हेतौ च जनो विषक्तवा-  
 निति प्रचिन्त्याहमतो विमोक्षणे ।  
 जनस्य सवादमिम प्रकलृप्तवा  
 न्स्वरूपतत्त्वार्थविबोधकारणम् ॥

सवादमेत यदि चिन्तयेन्नरो  
 विमुच्यतेऽज्ञानमहाभयागमात् ।  
 विमुक्तकामश्च तथा जन सदा  
 चरत्यशोक सम आत्मवित्सुखी ॥ ६ ॥

सूक्ष्मताव्यापिताप्रकरणम् ॥

सूक्ष्मताव्यापिते ज्ञेये गन्धादेरुत्तरोत्तरम् ।  
 प्रत्यगात्मावसानेषु पूर्वपूर्वप्रहाणत ॥

शारीरा पृथिवी तावद्यावद्ब्राह्मा प्रमाणत ।  
अम्बवादीनि च तत्त्वानि तावज्ज्ञेयानि कृत्स्नश ॥ २ ॥

वाय्वादीना यथोत्पत्ते पूर्व ख सर्वग तथा ।  
अहमेक सदा शुद्धश्चिन्मात्र सर्वगोऽद्वय ॥

ब्रह्माद्या स्थावरान्ता ये प्राणिनो मम पू स्मृता ।  
कामक्रोधादयो दोषा जायेरन्मे कुतोऽन्यत ॥

भूतदोषै सदास्पृष्ट सर्वभूतस्थमीश्वरम् ।  
नील व्योम यथा बालो दुष्ट मा वीक्षते जन ॥

मच्चैतन्यावभासत्वात्सर्वप्राणिधिया सदा ।  
पूर्वम प्राणिन सर्वे सर्वज्ञस्य विपाप्मन ॥

जनिमज्ज्ञानविज्ञेय स्वप्रज्ञानवदिष्यते ।  
नित्य निर्विषय ज्ञान तस्माद्द्वैत न विद्यते ॥ ७ ॥

ज्ञातुर्ज्ञातिर्हि नित्योक्ता सुषुप्ते त्वन्यशून्यत ।  
जाग्रज्ज्ञातिस्त्वविद्यातस्तद्ब्राह्म चासदिष्यताम् ॥

रूपवत्त्वाद्यसत्त्वात्तद्दृष्ट्यादे कर्मता यथा ।  
एव विज्ञानकर्मत्व भूम्नो नास्तीति गम्यते ॥ ९ ॥

## दृशिस्वरूपपरमार्थदर्शनप्रकरणम् ॥

दृशिस्वरूप गगनोपम पर

सकृद्विभात त्वजमेकमक्षरम् ।

अलेपक सर्वगत यदद्वय

तदेव चाह सतत विमुक्त ॐ ॥ १ ॥

दृशिस्तु शुद्धोऽहमविक्रियात्मको

न मेऽस्ति कश्चिद्विषय स्वभावत ।

पुरस्तिरश्चोर्ध्वमधश्च सर्वत

सुपूर्णभूमा त्वज आत्मनि स्थित ॥ २ ॥

अजोऽमरश्चैव तथाजरोऽमृत

स्वयप्रभ सर्वगतोऽहमद्वय ।

न कारण कार्यमतीव निर्मल

सदैव तृप्तश्च ततो विमुक्त ॐ ॥ ३ ॥

सुषुप्तजाग्रत्स्वपतश्च दर्शन

न मेऽस्ति किञ्चित्तु मतेर्हि मोहनम् ।

स्वतश्च तेषा परतोऽप्यसत्त्वत

स्तुरीय प्वास्मि सदा दृगद्वय ॥ ४ ॥



शरीरबुद्धीन्द्रियदुःखसतति  
 न मे न चाह मम निर्विकारत ।  
 असत्त्वहेतोश्च तथैव सतते-  
 रसत्त्वमस्या स्वपतो हि दृश्यवत् ॥

इदं तु सत्यं मम नास्ति विक्रिया  
 विकारहेतुर्न हि मेऽद्वयत्वत ।  
 न पुण्यपापे न च मोक्षबन्धने  
 न चास्ति वर्णाश्रमिताशरीरत ॥ ६ ॥

अनादितो निर्गुणतो न कर्म मे  
 फलं च तस्मात्परमोऽहमद्वय ।  
 यथा नभः सर्वगतं न लिप्यते  
 तथा ह्यहं देहगतोऽपि सूक्ष्मत ॥ ७ ॥

सदा च भूतेषु समोऽहमीश्वर  
 क्षराक्षराभ्यां परमो ह्यथोत्तम ।  
 परात्मतत्त्वं च तथाद्वयोऽपि स-  
 न्निपर्ययेणाभिवृत्तस्त्वविद्यया ॥ ८ ॥

अविद्यया भावनया च कर्मभि  
 विविक्तं आत्माव्यवधिं सुनिर्मलं ।

दृगादिशक्तिप्रचितोऽहमद्वय

स्थित स्वरूपे गगन यथाचलम् ॥ ९ ॥

अह पर ब्रह्म विनिश्चयात्मदृङ्

न जायते भूय इति श्रुतेर्वच ।

न चैव बीजेऽप्यसति प्रजायते

फल न जन्मास्ति ततो ह्यमोहता ॥ १० ॥

ममेदमित्थ च तथेदमीदृश

तथाहमेव न परो न चान्यथा ।

विमूढतैव न जनस्य कल्पना

सदा समे ब्रह्मणि चाद्वये शिवे ॥ ११ ॥

यदद्वय ज्ञानमतीव निर्मल

महात्मना तत्र नशोकमोहता ।

तयोरभावे न हि जन्म कर्म वा

भवेदय वेदविदा विनिश्चय ॥ १२ ॥

सुषुप्तवजाग्रति यो न पश्यति

द्वय तु पश्यन्नपि चाद्वयत्वत ।

तथा च कुर्वन्नपि निष्क्रियश्च य

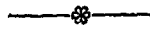
स आत्मविज्ञान्य इतीह निश्चय ॥ १३ ॥

इतीदमुक्त परमार्थदर्शन

मया हि वेदान्तविनिश्चित परम् ।

विमुच्यतेऽस्मिन्यदि निश्चितो भवे-

न्न लिप्यते व्योमवदेव कर्मभि ॥ १४ ॥



### ईक्षितृत्वप्रकरणम् ॥

ईक्षितृत्व स्वत सिद्ध जन्तूना च ततोऽन्यता ।

अज्ञानादित्यतोऽन्यत्व सदसीति निवर्त्यते ॥ १ ॥

एतावद्धथमृतत्व न किञ्चिदन्यत्सहायकम् ।

ज्ञानस्येति ब्रुवच्छास्त्र सलिलं कर्म बाधते ॥ २ ॥

सर्वेषा मनसो वृत्तमविशेषेण पश्यत ।

तस्य मे निर्विकारस्य विशेष स्यात्कथञ्चन ॥

मनोवृत्त मनश्चैव स्वप्नवजाग्रतीक्षितु ।

सप्रसादे द्वयासत्त्वाच्चिन्मात्र सर्वगोऽव्यय ॥

स्वप्न सत्यो यथाबोधाद्देहात्मत्व तथैव च ।

प्रत्यक्षादे प्रमाणत्व जाग्रत्स्यादात्मवेदनात् ॥ ५ ॥

व्योमवत्सर्वभूतस्थो भूतदोषैर्विवर्जित ।

साक्षी चेतागुण शुद्धो ब्रह्मैवास्मि स केवल ॥

नामरूपक्रियाभ्योऽन्यो नित्यमुक्तस्वरूपवान् ।

अहमात्मा पर ब्रह्म चिन्मात्रोऽह सदाद्वय ॥ ७ ॥

अह ब्रह्मास्मि कर्ता च भोक्ता चास्मीति ये विदु ।

ते नष्टा ज्ञानकर्मभ्या नास्तिका स्युर्न सशय ॥

धर्माधर्मफलैर्योग इष्टोऽदृष्टो यथात्मन ।

शास्त्राद्ब्रह्मत्वमप्यस्य मोक्षो ज्ञानात्तथेष्यताम् ॥

या माहारजनाद्यास्ता चासना स्वप्नदर्शिभि ।

अनुभूयन्त एवेह ततोऽन्य केवलो वृशि ॥ १० ॥

कोशादिव विनिष्कृष्ट कार्यकारणवर्जित ।

यथासिर्द्दश्यते स्वप्ने तद्वद्वोद्धा स्वयम्भ ॥ ११ ॥

आपेषात्प्रतिबुद्धस्य ज्ञस्य स्वाभाविक पदम् ।

उक्त नेत्यादिवाक्येन कल्पितस्यापनेतृणा ॥ १२ ॥

महाराजादयो लोका मयि यद्वत्प्रकल्पिता ।

स्वप्ने तद्वद्बुध विद्याद्रूप वासनया सह ॥ १३ ॥

देहलिङ्गात्मना कार्या वासनारूपिणा क्रिया ।  
नेति नेत्यात्मरूपत्वाच्च मे कार्या क्रिया क्वचित् ॥ १४ ॥

न ततोऽमृतताशास्ति कर्मणोऽज्ञानहेतुत ।  
मोक्षस्य ज्ञानहेतुत्वाच्च तदन्यदपेक्षते ॥ १५ ॥

अमृत चाभय नार्त नेतीत्यात्मा प्रियो मम ।  
विपरीतमतोऽन्यद्यस्यजेत्तत्सक्रिय तत ॥ १६ ॥

### प्रकाशप्रकरणम् ॥

प्रकाशस्य यथा देह सालोकमभिमन्यते ।  
द्रष्टाभास तथा चित्त द्रष्टाहमिति मन्यते ॥ १ ॥

यदेव दृश्यते लोके तेनाभिन्नत्वमात्मन ।  
प्रपद्यते ततो मूढस्तेनात्मान न चिन्दति ॥ २ ॥

दशमस्य नवात्मत्वप्रतिपत्तिवदात्मन ।  
दृश्येषु तद्भेदेषु मूढो लोको न चान्यथा ॥ ३ ॥

त्व कुरु त्व तदेवेति प्रत्ययावैककालिकौ ।  
एकनीडौ कथ स्याता विरुद्धौ न्यायतो वद् ॥ ४ ॥

देहाभिमानिनो दुःखनादेहस्य स्वभावतः ।  
स्वापवत्तत्प्रहाणाय तत्त्वमित्युच्यते दृशे ॥ ५ ॥

दृशेश्छाया यदारूढा मुखच्छायेव दर्शने ।  
पश्यस्तप्रत्यययोगी दृष्ट्वात्मेति मन्यते ॥ ६ ॥

तच्च मूढञ्च यद्यन्यप्रत्ययवेत्ति नो दृशे ।  
स एव योगिना श्रेष्ठो नेतरस्यान्नसशयः ॥ ७ ॥

विज्ञातेर्यस्तु विज्ञाता स त्वमित्युच्यते यतः ।  
स स्यादनुभवस्तस्य ततोऽन्योऽनुभवो मृषा ॥ ८ ॥

दृशिरूपे सदा नित्ये दर्शनादर्शने मयि ।  
कथं ख्याता ततो नान्य इष्यतेऽनुभवस्ततः ॥ ९ ॥

यत्स्थस्तापो रवेर्देहे दृशे स विषयो यथा ।  
सत्त्वस्थस्तद्भवेदेह दृशे स विषयस्तथा ॥ १० ॥

प्रतिषिद्धेदमशो ब्रह्ममिवैकरसोऽद्वयः ।  
नित्यमुक्तस्तथा शुद्धसोऽहं ब्रह्मास्मि केवलः ॥ ११ ॥

विज्ञातुर्नैव विज्ञाता परोऽन्यसंभवत्यतः ।  
विज्ञाताहं परो मुक्तसर्वभूतेषु सर्वदा ॥ १२ ॥

यो वेदालुप्तदृष्टित्वमात्मनोऽकर्तृता तथा ।  
ब्रह्मवित्त्व तथा मुक्त्वा स आत्मज्ञो न चेतरे ॥ १३ ॥

ज्ञातैवाहमविज्ञेय शुद्धो मुक्त सदेत्यपि ।  
विवेकी प्रत्ययो बुद्धेर्दृश्यत्वान्नाशवान्यत ॥ १४ ॥

अलुप्ता त्वात्मनो दृष्टिर्नोत्पाद्या कारकैर्यत ।  
दृश्यया चान्यया दृष्ट्या जन्यतास्या प्रकल्पिता ॥

देहात्मबुद्धयपेक्षत्वादात्मन कर्तृता मृषा ।  
नैव किञ्चित्करोमीति सत्या बुद्धि प्रमाणजा ॥ १६ ॥

कर्तृत्व कारकापेक्षमकर्तृत्व स्वभावत ।  
कर्ता भोक्तेति विज्ञान मृषैवेति सुनिश्चितम् ॥ १७ ॥

एव शास्त्रानुमानाभ्या स्वरूपेऽवगते सति ।  
नियोज्योऽहमिति ह्येषा सत्या बुद्धि कथ भवेत् ॥

यथा सर्वान्तर व्योम व्योम्नोऽप्याभ्यन्तरो ह्यहम् ।  
निर्विकारोऽचल शुद्धोऽजरो मुक्त सदाद्वय ॥ १९ ॥

### अचक्षुष्ट्वप्रकरणम् ।

अचक्षुष्ट्वान्न दृष्टिर्मे तथाश्रोत्रस्य का श्रुति ।  
 अवाक्त्वान्न तु वक्ति स्यादमनस्त्वान्मति कुत ॥ १ ॥  
 अप्राणस्य न कर्मास्ति बुद्ध्यभावे न वेदिता ।  
 विद्याविद्ये ततो न स्तश्चिन्मात्रज्योतिषो मम ॥ २ ॥  
 नित्यमुक्तस्य शुद्धस्य कूटस्थस्याविचालिन ।  
 अमृतस्याक्षरस्यैवमशरीरस्य सर्वदा ॥ ३ ॥  
 जिघत्सा वा पिपासा वा शोकमोहौ जरामृती ।  
 न विद्यन्तेऽशरीरत्वाद्ब्रथोमवद्वयापिनो मम ॥ ४ ॥  
 अस्पर्शत्वान्न मे स्पृष्टिर्नाजिह्वत्वाद्रसज्ञता ।  
 नित्यविज्ञानरूपस्य ज्ञानाज्ञाने न मे सदा ॥ ५ ॥  
 या तु स्यान्मानसी वृत्तिश्चाक्षुष्का रूपरञ्जना ।  
 नित्यमेवात्मनो दृष्ट्या नित्यया दृश्यते हि सा ॥ ६ ॥  
 नथान्येन्द्रिययुक्ता या वृत्तयो विषयाञ्जना ।  
 स्मृती रागादिरूपा च केवलान्तर्मनस्यपि ॥ ७ ॥  
 मानस्यस्तद्वदन्यस्य दृश्यन्ते स्वप्नवृत्तय ।  
 द्रष्टुर्दृष्टिस्ततो नित्या शुद्धानन्ता च केवला ॥ ८ ॥



अनित्या साविशुद्धेति गृह्यतेऽत्राविवेकत ।  
सुखी दुःखी तथा चाह दृश्ययोपाधिभूतया ॥ ९ ॥

मूढया मूढ इत्येव शुद्धया शुद्ध इत्यपि ।  
मन्यते सर्वलोकोऽयं येन ससारमृच्छति ॥ १० ॥

अन्नश्लुष्कादिशास्त्रोक्तं सवाह्याभ्यन्तरं ह्यजम् ।  
नित्यमुक्तमिहात्मानं मुमुक्षुश्चेत्सदा स्मरत् ॥ ११ ॥

अन्नश्लुष्कादिशास्त्राच्च नेन्द्रियाणि सदा मम ।  
अप्राणो ह्यमना शुभ्र इति चाथर्वणं वच ॥ १२ ॥

शब्दादीनामभावश्च श्रूयते मम काठके ।  
अप्राणो ह्यमना यस्मादविकारी सदा ह्यहम् ॥ १३ ॥

विक्षेपो नास्ति तस्मात् मे न समाधिस्ततो मम ।  
विक्षेपो वा समाधिर्वा मनसः स्याद्विकारिणः ॥ १४ ॥

अमनस्कस्य शुद्धस्य कथं तत्स्याद्द्वयं मम ।  
अमनस्त्वाविकारित्वे विदेहव्यापिनो मम ॥ १५ ॥

इत्येतद्यावदज्ञानं तावत्कार्यं ममाभवत् ।  
नित्यमुक्तस्य शुद्धस्य बुद्धस्य च सदा मम ॥ १६ ॥

समाधिर्वासमाधिर्वा कार्यं चान्यत्कुतो भवेत् ।  
मा हि ध्यात्वा च बुद्धा च मन्यन्ते कृतकृत्यताम् ॥

अहं ब्रह्मास्मि सर्वोऽस्मि शुद्धो बुद्धोऽस्म्यत सदा ।  
अजं सर्वत एवाहमजरश्चाक्षयोऽमृत ॥ १८ ॥

मदन्य सर्वभूतेषु बोद्धा कश्चिन्न विद्यते ।  
कर्माध्यक्षश्च साक्षी च चेता नित्योऽगुणोऽद्वय ॥ १९ ॥

न सञ्चाह न चासञ्च नोभय केवल शिव ।  
न मे सध्या न रात्रिर्वा नाहर्वा सर्वदा दृशे ॥ २० ॥

सर्वमूर्तिविमुक्त यद्यथा ख सूक्ष्ममद्वयम् ।  
तेनाप्यस्मि विना भूत ब्रह्मैवाह तथाद्वयम् ॥ २१ ॥

ममात्मास्य त आत्मेति भेदो व्योम्नो यथा भवेत् ।  
एकस्य सुषिभेदेन तथा मम विकल्पित ॥ २२ ॥

भेदोऽभेदस्तथा चैको नाना चेति विकल्पित ।  
ज्ञेय ज्ञाता गतिर्गन्ता मय्येकस्मिन्कुतो भवेत् ॥ २३ ॥

न मे हेय न चाहेयमविकारी यतो ह्यहम् ।  
सदा मुक्त सदा शुद्ध सदा बुद्धोऽगुणोऽद्वय ॥ २४ ॥

इत्येव सर्वदात्मान विद्यात्सर्वं समाहित ।  
विदित्वा मा स्वदेहस्थमृषिर्मुक्तो ध्रुवो भवेत् ॥ २५ ॥

कृतकृत्यश्च सिद्धश्च योगी ब्राह्मण एव च ।  
यदेव वेद तत्त्वार्थमन्यथा ह्यात्महा भवेत् ॥ २६ ॥

बेदार्थो निश्चितो ह्येष समासेन मयोदित ।  
सन्यासिभ्य प्रवक्तव्य शान्तेभ्य शिष्टबुद्धिना ॥ २७ ॥

### स्वप्नस्मृतिप्रकरणम् ॥

स्वप्नस्मृत्योर्घटादेर्हि रूपाभास प्रदृश्यते ।  
पुरा नून तदाकारा गीर्दृष्टेत्यनुमीयते ॥ १ ॥

भिक्षामदन्यथा स्वप्ने दृष्टो देहो न स स्वयम् ।  
जाग्रद्दृश्यात्तथा देहाद्ब्रष्टृत्वादन्य एव स ॥ २ ॥

मूषासिक्त यथा ताम्र तन्निभ जायते तथा ।  
रूपादीन्व्याप्तुवच्चित्त तन्निभ दृश्यते ध्रुवम् ॥ ३ ॥

व्यञ्जको वा यथालोको व्यङ्ग्यस्याकारतामियात् ।  
सर्वार्थव्यञ्जकत्वाद्धीरर्थाकारा प्रदृश्यते ॥ ४ ॥

धीरेवार्थस्वरूपा हि पुसा दृष्टा पुरापि च ।  
 न चेत्स्वप्ने कथ पश्येत्स्मरतो वाकृति कुत ॥ ५ ॥  
 व्यञ्जकत्व तदेवास्या रूपाद्याकारदृश्यता ।  
 द्रष्टृत्व च दृशेस्तद्ब्रह्म्याप्ति स्याद्धिय उद्भवे ॥ ६ ॥  
 चिन्मात्रज्योतिषा सर्वा सर्वदेहेषु बुद्ध्य ।  
 मया यस्मात्प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो ह्यहम् ॥ ७ ॥  
 करण कर्म कर्ता च क्रिया स्वप्ने फल च धी ।  
 जाग्रत्येव यतो दृष्टा द्रष्टा तस्मात्ततोऽन्यथा ॥ ८ ॥  
 बुद्ध्यादीनामनात्मत्व हेयोपादेयरूपत ।  
 हानोपादानकर्तात्मा न त्याज्यो न च गृह्यते ॥ ९ ॥  
 सबाह्याभ्यन्तरे शुद्धे प्राज्ञानेकरसे घने ।  
 बाह्यमाभ्यन्तर चान्यत्कथ हेय प्रकल्प्यते ॥ १० ॥  
 य आत्मा नेति नेतीति परापोहेन शोषित ।  
 स चेद्ब्रह्मविदात्मेष्टो यतेतात पर कथम् ॥ ११ ॥  
 अशनायाद्यतिक्रान्त ब्रह्मैवास्मि निरन्तरम् ।  
 कार्यवान्स्या कथ चाह विमृशेदेवमञ्जसा ॥ १२ ॥

पारगस्तु यथा नद्यास्तत्स्थ पार यियासति ।  
आत्मज्ञश्चेत्तथा कार्यं कर्तुमन्यदिहेच्छति ॥ १३ ॥

आत्मज्ञस्यापि यस्य स्याद्धानोपादानता यदि ।  
न मोक्षार्हं स विज्ञेयो वान्तोऽसौ ब्रह्मणा ध्रुवम् ॥

सादित्य हि जगत्प्राणस्तस्मान्नाहर्निशैव वा ।  
प्राणज्ञस्यापि न स्याता कुतो ब्रह्मविदोऽद्वये ॥

न स्मरत्यात्मनो ह्यात्मा विस्मरेद्वाप्यलुप्तचित् ।  
मनोऽपि स्मरतीत्येतज्ज्ञानमज्ञानहेतुजम् ॥ १६ ॥

ज्ञातुर्ज्ञेयं परो ह्यात्मा सोऽविद्याकल्पित स्मृत ।  
अपोढे विद्यया तस्मिन्रज्ज्वा सर्प इवाद्य ॥ १७ ॥

कर्तृकर्मफलाभावात्सबाह्याभ्यन्तरं ह्यजम् ।  
ममाह वेति यो भावस्तस्मिन्कस्य कुतो भवेत् ॥ १८ ॥

आत्मा ह्यात्मीय इत्येष भावोऽविद्याप्रकल्पित ।  
आत्मैकत्वे ह्यसौ नास्ति बीजाभावे कुत फलम् ॥

द्रष्टुं श्रोतुं तथा मन्तुं विज्ञानैव तदक्षरम् ।  
द्रष्टुं नान्यदतस्तस्माद्यस्माद्द्रष्टाहमक्षरम् ॥ २० ॥

स्थावर जङ्गम चैव द्रष्टृत्वादिक्रियायुतम् ।  
सर्वमक्षरमेघात सर्वस्यात्माक्षर त्वहम् ॥ २१ ॥

अकार्यशेषमात्मानमक्रियात्मक्रियाफलम् ।  
निर्मम निरहकार य पश्यति स पश्यति ॥ २२ ॥

ममाहकारयत्नेच्छा शून्या एव स्वभावत ।  
आत्मनीति यदि ज्ञातमाध्व स्वस्था किमीहितै ॥ २३ ॥

योऽहकर्तारमात्मान तथा वेतारमेव च ।  
वेत्यनात्मज्ञ एवासौ योऽन्यथाज्ञ स आत्मवित् ॥ २४ ॥

यथान्यत्वेऽपि तादात्म्य देहादिष्वात्मनो मतम् ।  
तथाकर्तुरविज्ञानात्फलकर्मात्मतात्मन ॥ २५ ॥

दृष्टि श्रुतिर्मतिर्ज्ञाति स्वप्ने दृष्टा जनै सदा ।  
तासामात्मस्वरूपत्वाद्दत् प्रत्यक्षतात्मन ॥ २६ ॥

परलोकभय यस्य नास्ति मृत्युभय तथा ।  
तस्यात्मज्ञस्य शोच्या स्यु स ब्रह्मेन्द्रा अपीश्वरा ॥

ईश्वरत्वेन किं तस्य ब्रह्मेन्द्रत्वेन वा पुन ।  
तृष्णा चेत्सर्वतश्छिन्ना सर्वदैन्योद्भवाशुभा ॥ २८ ॥

अहमित्यात्मधीर्या च ममेत्यात्मीयधीरपि ।

अर्थशून्या यदा यस्य स आत्मज्ञो भवेत्तदा ॥ २९ ॥

बुद्ध्यादौ सत्युपाधौ च तथा सत्यविशेषता ।

यस्य चेदात्मनो ज्ञाता तस्य कार्यं कथं भवेत् ॥ ३० ॥

प्रसन्ने विमले व्योम्नि प्रज्ञानैकरसेऽद्वये ।

उत्पन्नात्मधियो ब्रूत किमन्यत्कार्यमिष्यते ॥ ३१ ॥

आत्मानं सर्वभूतस्थममित्रं चात्मनोऽपि यः ।

पश्यन्निच्छत्यसौ नूनं शीतीकर्तुं विभावसुम् ॥ ३२ ॥

प्रज्ञाप्राणानुकार्यात्मा च्छायेवाक्षादिगोचरः ।

ध्यायतीवेति चोक्तो हि शुद्धो मुक्तः स्वतो हि सः ॥

अप्राणस्यामनस्कस्य तथाससर्गिणो दृशे ।

व्योमवद्वथापिन्ने ह्यस्य कथं कार्यं भवेन्मम ॥ ३४ ॥

असमाधिं न पश्यामि निर्विकारस्य सर्वदा ।

ब्रह्मणो मे विशुद्धस्य शोध्यं नान्यद्विपाप्मनः ॥ ३५ ॥

गन्तव्यं च तथा नैव सर्वगस्याचलस्य च ।

नोर्ध्वं नाधस्तिरो वापि निष्कलस्यागुणत्वतः ॥ ३६ ॥

चिन्मात्रज्योतिषो नित्य तमस्तस्मिन्न विद्यते ।  
कथ कार्य ममैवाद्य नित्यमुक्तस्य शिष्यते ॥ ३७ ॥

अमनस्कस्य का चिन्ता क्रिया बानिन्द्रियस्य का ।  
अप्राणो ह्यमना शुभ्र इति सत्य श्रुतैर्वच ॥ ३८ ॥

अकालत्वाददेशत्वाद्विभुत्वादनिमित्तत ।  
आत्मनो नैव कालादेरपेक्षा ध्यायत सदा ॥ ३९ ॥

यस्मिन्वेवाश्च वेदाश्च  
पवित्र कृत्स्नमेकताम् ।  
व्रजत्तन्मानस तीर्थं  
यस्मिन्स्नात्वामृतो भवेत् ॥ ४० ॥

न चास्ति शब्दादिरनन्यवेदन  
परस्परेणापि न चैव दृश्यते । \*  
परेण दृश्यास्तु यथा रसादय  
स्तथैव दृश्यत्वत एव दैहिका ॥ ४१ ॥

अह ममेत्येषणयत्नविक्रिया-  
सुखादयस्तद्विह प्रदृश्यत ।



दृश्यन्वयोगाच्च परस्परेण ते  
न दृश्यता यान्ति तत परो भवेत् ॥ ४२ ॥

अहक्रियाद्या हि समस्तविक्रिया  
मकर्तृका कर्मफलेन सहता ।  
चित्तिस्वरूपेण समन्ततोऽर्कव-  
त्प्रकाश्यमानासिततात्मनो ह्यत ॥ ४३ ॥

दृशिस्वरूपेण हि सर्वदेहिना  
वियद्यथा व्याप्य मनास्यवस्थित ।  
अतो न तस्मादपरोऽस्ति वेदिता  
परोऽपि तस्मादत एक ईश्वर ॥ ४४ ॥

शरीरबुद्धयोर्द्यदि चान्यदृश्यता  
निरात्मवादा सुनिराकृता मया ।  
परञ्च शुद्धो ह्यविशुद्धिकर्मत  
सुनिर्मलं सर्वगतोऽसितोऽद्वय ॥ ४५ ॥

घटादिरूप यदि ते न गृह्यते  
मन प्रवृत्त बहुधा स्ववृत्तिभि ।  
अशुद्धयच्चिद्रूपविकारदोषता  
मतेर्यथा वारयितु न पार्यते ॥ ४६ ॥

यथा विशुद्ध गगन निरन्तर  
 न सञ्जते नापि च लिप्यते तथा ।  
 समस्तभूतेषु सदैवतेष्वय  
 सम सदात्मा ह्यजरोऽमरोऽभय ॥ ४७ ॥

अमूर्तमूर्तानि च कर्मवासना  
 दृशिस्वरूपस्य बहि प्रकल्पिता ।  
 अविद्यया ह्यात्मनि मूढदृष्टिभि  
 र्व्यपोह्य नेतीत्यवशेषितो दृशि ॥ ४८ ॥

प्रबोधरूप मनसोऽर्थयोगज  
 स्मृतौ च सुप्तस्य च दृश्यतेऽर्थवत् ।  
 तथैव देहप्रतिमानत पृथ-  
 ग्दशे शरीर च मनश्च दृश्यत ॥ ४९ ॥

स्वभावशुद्धे गगने घनादिके  
 मलेऽपयाते सति चाविशेषता ।  
 यथा च तद्वच्छ्रुतिवारितद्वये  
 सदाविशेषो गगनोपमे दृशौ ॥ ५० ॥

## नान्यदन्यत्प्रकरणम् ॥

नान्यदन्यद्भवेद्यस्मान्नान्यत्किञ्चिद्विचिन्तयेत् ।  
अन्यस्यान्यात्मभावे हि नाशस्तस्य ध्रुवो भवेत् ॥ १ ॥

स्मरतो दृश्यते दृष्ट पटे चित्रमिवापितम् ।  
यत्र येन च तौ ज्ञेयौ सत्त्वक्षेत्रज्ञसङ्गौ ॥ २ ॥

फलान्त चातुभूत यद्युक्त कर्त्रादिकारकै ।  
स्मर्यमाण हि कर्मस्थ पूर्वकर्मैव तच्चित ॥ ३ ॥

द्रष्टृश्चान्यद्भवेद्दृश्य दृश्यत्वाद्धटवत्सदा ।  
दृश्याद्द्रष्टासजातीयो न धीवत्साक्षितान्यथा ॥ ४ ॥

स्वात्मबुद्धिमपेक्ष्यासौ विधीना स्यात्प्रयोजक ।  
जात्यादि शववत्तेन तद्भ्रान्नात्मतान्यथा ॥ ५ ॥

न प्रियाप्रिय इत्युक्तेर्नादेहत्व क्रियाफलम् ।  
देहयोग क्रियाहेतुस्तस्माद्विद्वान्क्रियास्त्यजेत् ॥ ६ ॥

कर्मस्वात्मा स्वतन्त्रश्चेन्नित्यतौ च तथेप्यताम् ।  
अदेहत्वे फलेऽकार्ये ज्ञाते कुर्यात्कथ क्रिया ॥ ७ ॥

जात्यादीन्सपरित्यज्य निमित्त कर्मणा बुध ।  
कर्महेतुविरुद्ध यत्स्वरूप शास्त्रत स्मरेत् ॥ ८ ॥

आत्मैक सर्वभूतेषु तानि तस्मिंश्च खे यथा ।  
पर्यगाद्दधोमवत्सर्व शुक्र दीप्तिमदिष्यते ॥ ९ ॥

ब्रणस्नाय्वोरभावेन स्थूल देह निवारयेत् ।  
शुद्धपापतयालेप लिङ्ग चाकायमित्युत ॥ १० ॥

वासुदेवो यथाश्वत्थे स्वदेहे चाब्रवीत्समम् ।  
तद्वद्वेत्ति य आत्मान सम स ब्रह्मवित्तम ॥ ११ ॥

यथा ह्यन्यशरीरेषु ममाहता न चेष्यते ।  
अस्मिंश्चापि तथा देहे धीसाक्षित्वाविशेषत ॥ १२ ॥

रूपसस्कारतुल्याधी रागद्वेषौ भय च यत् ।  
गृह्यते धीश्रय तस्माज्ज्ञाता शुद्धोऽभय सदा ॥ १३ ॥

यन्मनास्तन्मयोऽन्यत्वे नात्मत्वाप्तौ क्रियात्मनि ।  
आत्मत्वे चानपेक्षत्वात्सापेक्ष हि न तत्स्वयम् ॥ १४ ॥

खमिवैकरसा ज्ञप्तिरविभक्ताजरामला ।  
चक्षुराद्युपधाना सा विपरीता विभाव्यते ॥ १५ ॥

दृश्यत्वादहमित्येष नात्मधर्मो घटादिवत् ।  
तथान्ये प्रत्यया ज्ञेया दाषाश्चात्मामलो ह्यत ॥ १६ ॥

सर्वप्रत्ययसाक्षित्वादविकारी च सर्वग ।  
त्रिक्रियेत यदि द्रष्टा बुद्ध्यादीवाल्पविद्भवेत् ॥ १७ ॥

न दृष्टिर्लुप्यते द्रष्टुश्चक्षुरादेर्यथैव तत् ।  
न हि द्रष्टुरिति ह्युक्त तस्माद्द्रष्टा सदैव इक् ॥ १८ ॥

सघातो वास्मि भूताना करणाना तथैव च ।  
न्यस्त वान्यतमो वास्मि को वास्मीति विचारयेत् ॥

व्यस्त नाह समस्त वा भूतमिन्द्रियमेव वा ।  
ज्ञेयत्वात्करणत्वाच्च ज्ञातान्योऽस्माद्धटादिवत् ॥ २० ॥

आत्मान्नेरिन्धना बुद्धिरविद्याकामकर्मभि ।  
दीपिता प्रज्वलत्येषा द्वारै श्रोत्रादिभि सदा ॥ २१ ॥

दक्षिणाक्षिप्रधानेषु यदा बुद्धिर्विचेष्टते ।  
विषयैर्हविषा दीप्त आत्माग्नि स्थूलभुक्तदा ॥ २२ ॥

ह्यन्ते तु हवींषीति रूपादिग्रहणे स्मरन् ।  
अरागद्वेष आत्मान्नौ जाग्रद्दोषैर्न लिप्यते ॥ २३ ॥

मानसे तु गृहे व्यक्ता अविद्याकर्मवासना ।  
पश्यस्तैजस आत्मोक्त स्वयज्योति प्रकाशिता ॥ २४

विषया वासना वापि चोद्यन्ते नैव कर्मभि ।  
यदा बुद्धौ तदा ज्ञेय प्राज्ञ आत्मा ह्यनन्यदृक् ॥ २५ ॥

मनोबुद्धीन्द्रियाणा च ह्यवस्था कर्मचोदिता ।  
चैतन्येनैव भास्यन्ते रविणेव घटादय ॥ २६ ॥

तत्रैव सति बुद्धीर्क्ष आत्मभासावभासयन् ।  
कर्ता तासा यदर्थास्ता मूढैरेवाभिधीयते ॥ २७ ॥

सर्वज्ञोऽप्यत एव स्यात्स्वेन भासावभासयन् ।  
सर्व सर्वक्रियाहेतो सर्वकृत्त्व तथात्मन ॥ २८ ॥

सोपाधिश्चैवमात्मोक्तो निरुपायोऽनुपाधिक ।  
निष्कलो निर्गुण शुद्धस्त मनो वाक्च नाप्नुत ॥

चेतनोऽचेतनो वापि कर्ताकर्ता गतोऽगत ।  
बद्धो मुक्तस्तथा चैकोऽनेक शुद्धोऽन्यथेति वा ॥

अप्राप्यैव निवर्तन्ते वाचो धीभि सहैव तु ।  
निर्गुणत्वात्क्रियाभावाद्धिशेषाणामभावत ॥ ३१ ॥

व्यापक सर्वतो व्योम मूर्ते सर्वैर्वियोजितम् ।  
यथा तद्ब्रह्मदिहात्मान विन्धाच्छुद्ध पर पदम् ॥ ३२ ॥

दृष्ट हित्वा स्मृतिं तस्मिन्सर्वग्रश्च तमस्त्यजेत् ।  
सर्वदृग्ज्योतिषा युक्तो दिनकृच्छार्वर यथा ॥ ३३ ॥

रूपस्मृत्यन्धकारार्था प्रत्यया यख गोचरा ।  
स एवात्मा समो द्रष्टा सर्वभूतेषु सर्वग ॥ ३४ ॥

आत्मबुद्धिमनश्चक्षुर्विषयालोकसगमात् ।  
विचित्रो जायते बुद्धे प्रत्ययोऽज्ञानलक्षण ॥ ३५ ॥

विविच्यास्मात्स्वमात्मान विन्धाच्छुद्ध पर पदम् ।  
द्रष्टार सर्वभूतस्य सम सर्वभयातिगम् ॥ ३६ ॥

समस्त सर्वग शान्त विमल व्योमवत्स्थितम् ।  
निष्कल निष्क्रिय सर्व नित्य द्वन्द्वैर्विवर्जितम् ॥ ३७ ॥

सर्वप्रत्ययसाक्षी ज्ञ कथ ज्ञेयो मयेत्युत ।  
विमृश्यैव विजानीयाज्ज्ञात ब्रह्म न वेत्ति वा ॥ ३८ ॥

अदृष्ट द्रष्टृविज्ञात दभ्रमित्यादिशासनात् ।  
नेव ज्ञेय मयान्यैर्वा पर ब्रह्म कथञ्चन ॥ ३९ ॥

स्वरूपाव्यवधानाभ्या ज्ञानालोकस्वभावत ।

अन्यज्ञानानपेक्षत्वाज्ज्ञात ब्रह्म सदा मया ॥ ४० ॥

नान्येन ज्योतिषा कार्यं रवेरात्मप्रकाशने ।

स्वबोधान्नान्यबोधेच्छा बोधस्यात्मप्रकाशने ॥ ४१ ॥

न तस्थैवान्यतोऽपेक्षा स्वरूप यस्य यद्भवेत् ।

प्रकाशान्तरदृश्यो न प्रकाशो ह्यस्ति कश्चन ॥ ४२ ॥

व्यक्ति स्यादप्रकाशस्य प्रकाशात्मसमागमात् ।

प्रकाशस्त्वर्ककार्यं स्यादिति मिथ्यावचो ह्यत ॥ ४३ ॥

यतोऽभूत्वा भवेद्यच्च तस्य तत्कार्यमिष्यते ।

स्वरूपत्वादभूत्वा न प्रकाशो जायते रवे ॥ ४४ ॥

सत्तामात्रे प्रकाशस्य कर्तादित्यादिरिष्यते ।

श्रटादिव्यक्तितो यद्वत्तद्वद्वोधात्मनीष्यताम् ॥ ४५ ॥

बिलात्सर्पस्य निर्याणे सूर्यो यद्वत्प्रकाशक ।

प्रयत्नेन विना तद्वज्ज्ञातात्मा बोधरूपत ॥ ४६ ॥

दग्धैवमुष्ण सत्ताया तद्वद्वोधात्मनीष्यताम् ।

सत्येव यदुपाधौ तु ज्ञाते सर्प इवोत्थिते ॥ ४७ ॥



ज्ञानायत्नोऽपि तद्वज्र कर्ता भ्रामकवद्भवेत् ।  
स्वरूपेण स्वयं नात्मा ज्ञेयोऽज्ञेयोऽथवा तत ॥ ४८ ॥

विदिताविदिताभ्या तदन्यदेवेति शासनात् ।  
बन्धमोक्षादयो भावास्तद्वदात्मनि कल्पिता ॥

नाहोरात्रे यथा सूर्ये प्रभारूपाविशेषत ।  
बोधरूपाविशेषात्त बोधाबोधौ तथात्मनि ॥ ५० ॥

यथोक्तं ब्रह्म यो वेद हानोपादानवजितम् ।  
यथोक्तेन विधानेन स सत्यं नैव जायते ॥ ५१ ॥

जन्ममृत्युप्रघाहेषु पतितो नैव शक्नुयात् ।  
इत उद्धर्तुमात्मानं ज्ञानादन्येन केनचित् ॥ ५२ ॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशया ।  
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्ट इति श्रुते ॥

ममाहमित्येतदपोह्य सर्वतो

विमुक्तदेहं पदमम्बरोपमम् ।

सुदृष्टशास्त्रानुमितिभ्य ईरित

विमुच्यतेऽस्मिन्यदि निश्चितो नर ॥ ५४ ॥

## पार्थिवप्रकरणम् ॥

पार्थिव कठिनो धातुर्द्रवो देहे स्मृतोऽम्मय ।  
पक्तिचेष्टावकाशा स्युर्वह्निवाय्वम्बरोद्भवा ॥ १ ॥

घ्राणादीनि तदर्थाश्च पृथिव्यादिगुणा क्रमात् ।  
रूपालोकचदिष्ट हि सजातीयार्थमिन्द्रियम् ॥ २ ॥

बुद्ध्यर्थान्याद्दुरेतानि वाक्पाण्यादीनि कर्मणे ।  
तद्विकल्पार्थमन्त स्थ मन एकादश भवेत् ॥ ३ ॥

निश्चयार्था भवेद्बुद्धिस्ता सर्वार्थानुभावनीम् ।  
ज्ञातात्मोक्त स्वरूपेण ज्योतिषा व्यञ्जयन्सदा ॥ ४ ॥

व्यञ्जकस्तु यथालोको व्यङ्ग्यस्याकारता गत ।  
व्यतिकीर्णोऽप्यसकीर्णस्तद्वज्ज्वा प्रत्ययै सदा ॥ ५ ॥

स्थितो दीपो यथायत्न प्राप्त सर्व प्रकाशयेत् ।  
शब्दाद्याकारबुद्धीर्ज्ञा प्राप्तास्तद्वत्प्रपश्यति ॥ ६ ॥

शरीरेन्द्रियसघात आत्मत्वेन गता धियम् ।  
नित्यात्मज्योतिषा दीप्ता विशिषन्ति सुखादय ॥ ७ ॥

शिरोदु खादिनात्मान दु ख्यस्मीति हि पश्यति ।  
द्रष्टान्यो दु खिनो दृश्याद्रष्टृत्वाच्च न दु ख्यसौ ॥ ८ ॥

दु खी स्याद्दु ख्यहमानाद्दु खिनो दर्शनात् न वा ।  
सहतेऽङ्गादिभिर्द्रष्टा दु खी दु खस्य नैव स ॥

चक्षुर्वत्कर्मकर्तृत्व स्याच्चेन्नानेकमेव तत् ।  
सहत च ततो नात्मा द्रष्टृत्वात्कर्मता व्रजेत् ॥ १० ॥

ज्ञानयत्नाद्यनेकत्वमात्मनोऽपि मत यदि ।  
नैकज्ञानगुणत्वात्तु ज्योतिर्वत्तस्य कर्मता ॥ ११ ॥

ज्योतिषो द्योतकत्वेऽपि यद्वन्मात्मप्रकाशनम् ।  
भेदेऽप्येव समत्वात्तज्ज्ञ आत्मान नैव पश्यति ॥

यद्धर्मा य पदार्थो न तस्यैवेयात्स कर्मनाम् ।  
न ह्यात्मान दहत्यग्निस्तथा नैव प्रकाशयेत् ॥

एतेनैवात्मनात्मनो ग्रहो बुद्धेर्निराकृत ।  
अशोऽप्येव समत्वाद्धि निर्भेदत्वाच्च युज्यते ॥

शून्यतापि न युक्तैव बुद्धेरन्येन दृश्यता ।  
युक्तातो घटवत्तस्या प्राक्सिद्धेश्च विकल्पत ॥ १५ ॥

अविकल्प तदस्त्येव यत्पूर्व स्याद्विकल्पत ।  
विकल्पोत्पत्तिहेतुत्वाद्यद्यस्यैव तु कारणम् ॥ १६ ॥

अज्ञान कल्पनामूल ससारस्य नियामकम् ।  
हित्वात्मान पर ब्रह्म विन्द्यान्मुक्त सदाभयम् ॥

जाग्रत्स्वप्नौ तयोर्बीज सुषुप्ताख्य तमोमयम् ।  
अन्योन्यस्मिन्नसत्त्वाच्च नास्तीत्येतन्नय त्यजेत् ॥

आत्मबुद्धिमनश्चक्षुरालोकार्थादिसकरात् ।  
भ्रान्ति स्यादात्मकमेति क्रियाणा सनिपातत ॥

निमीलोन्मीलने स्थाने वायव्ये ते न चक्षुष ।  
प्रकाशत्वान्मनस्येव बुद्धौ न स्त प्रकाशत ॥

सकल्पाध्यवसायौ तु मनोबुद्ध्योर्यथा क्रमात् ।  
नेतरेतरधर्मत्व सर्व चात्मनि कल्पितम् ॥

स्थानावच्छेददृष्टि स्यादिन्द्रियाणा तदात्मताम् ।  
गता धीस्ता हि पश्यञ्जो देहमात्र इवेक्ष्यते ॥

क्षणिक हि तदत्यर्थं धर्ममात्र निरन्तरम् ।  
सादृश्याद्दीपवत्तद्धीस्तच्छान्ति पुरुषार्थता ॥ २३ ॥

स्वाकारान्यावभास्य च येषा रूपादि विद्यते ।  
येषा नास्ति ततश्चान्यत्पूर्वासगतिरुच्यते ॥ २४ ॥

बाह्याकारत्वतो क्षप्ते स्मृत्यभाव सदा क्षणात् ।  
क्षणिकत्वाच्च सस्कार नैवाधत्ते क्वचित्तु धी ॥ २५ ॥

आधारस्याप्यसत्त्वाच्च तुल्यतानिर्निमित्तत ।  
स्थाने वा क्षणिकत्वस्य हान स्यान्न तदिष्यते ॥ २६ ॥

शान्तेश्चायत्नसिद्धत्वात्साधनोक्तिरनर्थिका ।  
एकैकस्मिन्समाप्तत्वाच्छान्तेरन्यानपेक्षता ॥ २७ ॥

अपेक्षा यदि भिन्नेऽपि परसतान इष्यताम् ।  
सर्वार्थे क्षणिके कस्मिंस्तथाप्यन्यानपेक्षता ॥ २८ ॥

तुल्यकालसमुद्भूतावितरेतरयोगिणौ ।  
योगाच्च सस्कृतो यस्तु सोऽन्य हीक्षितुमर्हति ॥ २९ ॥

मृषाभ्यासस्तु यत्र स्यात्तन्नाशस्तत्र नो मत ।  
सर्वनाशो भवेद्यस्य मोक्ष कस्य फल वद ॥ ३० ॥

अस्ति तावत्स्वय नाम ज्ञान वात्मान्यदेव वा ।  
भावाभावज्ञतस्तस्य नाभावस्त्वधिगम्यते ॥ ३१ ॥

येनाधिगम्यतेऽभावस्तत्सत्स्यात्तन्न चेद्भवेत् ।  
भावाभावानभिज्ञत्व लोकस्य स्यान्न चेष्ट्यते ॥ ३२ ॥

सदसत्सदसच्चेति विकल्पात्प्राग्यदिष्यते ।  
तदद्वैत समत्वात् नित्य चान्यद्विकल्पितात् ॥ ३३ ॥

विकल्पोद्भवतोऽसत्त्व स्वप्नदृश्यवदिष्यताम् ।  
द्वैतस्य प्रागसत्त्वाच्च सदसत्त्वादिकल्पनात् ॥ ३४ ॥

वाचारम्भणशास्त्राच्च विकाराणा ह्यभावता ।  
मृत्यो स मृत्युमित्यादेर्मम मायेति च स्मृते ॥ ३५ ॥

विशुद्धिश्चात एवास्य विकल्पाच्च विलक्षण ।  
उपादेयो न हेयोऽत आत्मा नान्यैरकल्पित ॥ ३६ ॥

अप्रकाशो यथादित्ये नास्ति ज्योति स्वभावत ।  
नित्यबोधस्वरूपत्वान्नाज्ञान तद्वदात्मनि ॥ ३७ ॥

तथाविक्रियरूपत्वान्नावस्थान्तरमात्मन ।  
अवस्थान्तरवत्त्वे हि नाशोऽख स्यान्न सशय ॥ ३८ ॥

मोक्षोऽवस्थान्तर यस्य कृतक स चलो ह्यत ।  
न सयोगो वियोगो वा मोक्षो युक्त कथञ्चन ॥ ३९ ॥

सयोगस्याप्यनित्यत्वाद्वियोगस्य तथैव च ।  
गमनागमने चैव स्वरूप तु न हीयते ॥ ४० ॥

स्वरूपस्यानिमित्तत्वात्सनिमित्ता हि चापरे ।  
अनुपात्त स्वरूप हि स्वेनात्यक्त तथैव च ॥ ४१ ॥

स्वरूपत्वान्न सर्वस्य त्यक्तु शक्यो ह्यनन्यत ।  
ग्रहीतु वा ततो नित्योऽविषयत्वात्पृथक्त्वत ॥ ४२ ॥

आत्मार्थत्वाच्च सर्वस्य नित्य आत्मैव केवल ।  
त्यजेत्तस्मात्क्रिया सर्वा साधनै सह मोक्षवित् ॥

आत्मलाभ परो लाभ इति शास्त्रोपपत्तय ।  
अलाभोऽनात्मलाभस्तु त्यजेत्तस्मादनात्मताम् ॥ ४४ ॥

गुणाना समभावस्य भ्रशो न ह्युपपद्यते ।  
अविद्यादे प्रसुप्तत्वान्न चान्यो हेतुरिष्यते ॥ ४५ ॥

इतरेतरहेतुत्वे प्रवृत्ति स्यात्सदा न वा ।  
नियमो न प्रवृत्तीना गुणेष्वात्मनि वा भवेत् ॥ ४६ ॥

विशेषो मुक्तबद्धाना तादर्थ्ये न च युज्यते ।  
अर्थार्थिनोस्तु सबन्धो नार्थी ह्यो नेतरोऽपि वा ॥ ४७ ॥

प्रधानस्य च पारार्थ्यं पुरुषस्याविकारत ।  
न युक्त साख्यशास्त्रेऽपि विकारेऽपि न युज्यते ॥

सबन्धानुपपत्तेश्च प्रकृते पुरुषस्य च ।  
मिथोऽयुक्त तदर्थत्व प्रधानस्याचितित्वत ॥ ४९ ॥

क्रियोत्पत्तौ विनाशित्व ज्ञानमात्रे च पूर्ववत् ।  
निर्निमित्ते त्वनिर्मोक्ष प्रधानस्य प्रसज्यते ॥ ५० ॥

न प्रकाश्य यथोष्णत्व ज्ञानेनैव सुखादय ।  
एकनीडत्वतोऽग्राह्या स्यु कणादादिवर्त्मनाम् ॥ ५१ ॥

युगपत्समवेतत्व सुखविज्ञानयोरपि ।  
मनोयोगैकहेतुत्वादग्राह्यत्व सुखस्य च ॥ ५२ ॥

तथान्येषा च भिन्नत्वाद्युगपज्जन्म नेष्यते ।  
गुणाना समवेतत्व ज्ञान चेन्न विशेषणात् ॥ ५३ ॥

ज्ञानेनैव विशेष्यत्वाज्ज्ञानाप्यत्व स्मृतेस्तथा ।  
सुख ज्ञात मयेत्येव तवाज्ञानात्मकत्वत ॥ ५४ ॥

सुखादेर्नात्मधर्मत्वमात्मनस्तेऽविकारत ।  
भेदादन्यस्य कस्मान्न मनसो वाविशेषत ॥ ५५ ॥



स्यान्मालापरिहार्यां तु ज्ञान चेज्ज्ञेयता व्रजेत् ।  
युगपद्वापि चोत्पत्तिरभ्युपेतात इष्यताम् ॥ ५६ ॥

अनवस्थान्तरत्वाच्च बन्धो नात्मनि युज्यते ।  
नाशुद्धिश्चाप्यसङ्गत्वादसङ्गो हीति च श्रुते ॥ ५७ ॥

सूक्ष्मैकागोचरेभ्यश्च न लिप्यत इति श्रुते ।  
एव तर्हि न मोक्षोऽस्ति बन्धाभावात्कथञ्चन ॥ ५८ ॥

शास्त्रानर्थक्यमेव स्यान्न बुद्धेर्भ्रान्तिरिष्यते ॥  
बन्धो मोक्षश्च तन्नाश स यथोक्तो न चान्यथा ॥ ५९ ॥

बोध्वात्मज्योतिषा दीप्ता बोधमात्मनि मन्यते ।  
बुद्धिर्नान्योऽस्ति बोद्धेति सेय भ्रान्तिर्हि धीगता ॥

बोधस्यात्मस्वरूपत्वान्नित्य तत्रोपचर्यते ।  
अविवेकोऽप्यनाद्योऽय ससारो नान्य इष्यते ॥ ६१ ॥

मोक्षस्तन्नाश एव स्यान्नान्योऽस्त्यनुपपत्तित ।  
येषा वस्त्वन्तरापत्तिर्मोक्षो नाशस्तु तैर्मत ॥ ६२ ॥

अवस्थान्तरमप्येवमविकारात्तु युज्यते ।  
विकारेऽवयवित्व स्यात्ततो नाशो घटादिवत् ॥ ६३ ॥

तस्मान्झान्तिरतोऽन्या हि बन्धमोक्षादिकल्पना ।  
साख्यकाणादबौद्धाना मीमासाहतकल्पना ॥ ६४ ॥

शास्त्रयुक्तिविरोधात्ता नादर्थव्या कदाचन ।  
शक्यन्ते शतशो वक्तु दोषास्तासा सहस्रश ॥ ६५ ॥

अपि निन्दोपपत्तेश्च यान्यतोऽन्यानि चेत्यत ।  
त्यक्त्वातो ह्यन्यशास्त्रोक्तीर्मतिं कुर्याद्बुद्धा बुध ॥ ६६ ॥

श्रद्धाभक्ती पुरस्कृत्य हित्वा सर्वमनार्जवम् ।  
वेदान्तस्यैव तत्त्वार्थे व्यासस्याभिमतं तथा ॥ ६७ ॥

इति प्रणुञ्जा द्वयवादिकल्पना  
निरात्मवादाश्च तथा हि युक्तित ।  
व्यपेतशङ्का परवादत स्थिरा  
मुमुक्षवो ज्ञानपथे स्युरित्यत ॥ ६८ ॥

स्वसाक्षिक ज्ञानमतीव निर्मल  
विकल्पनाभ्यो विपरीतमद्वयम् ।  
अवाप्य सम्यग्यदि निश्चितो भवे  
शिरन्वयो निर्वृतिमेति शाश्वतीम् ॥ ६९ ॥

इद रहस्य परम परायण  
व्यपेतदोषैरभिमानवर्जितै ।

समीक्ष्य कार्या मतिरार्जवे सदा  
न तत्त्वदृक्शास्त्र्यमतिर्हि कश्चन ॥ ७० ॥

अनेकजन्मान्तरसच्चितैर्नरो  
विमुच्यतेऽज्ञाननिमित्तपातकै ।  
इदं विदित्वा परमं च पावन  
न लिप्यते व्योमवदेव कर्मभि ॥ ७१ ॥

प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च  
प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे ।  
गुणान्वितायानुगताय सर्वदा  
प्रदेयमेतत्सततं मुमुक्षवे ॥ ७२ ॥

परस्य देहे न यथात्ममानिता  
परस्य तद्वत्परमार्थमीक्ष्य च ।  
इदं हि विज्ञानमतीव निर्मल  
संप्राप्य मुक्तोऽथ भवेच्च सर्वत ॥ ७३ ॥

न हीह लाभोऽभ्यधिकोऽस्ति कश्चन  
स्वरूपलाभात्स इतो हि नान्यत ।  
न देयमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिक  
स्वरूपलाभं त्वपरीक्ष्य यत्नत ॥ ७४ ॥

## सम्यङ्ज्ञातिप्रकरणम् ॥

आत्मा ज्ञेय परो ह्यात्मा यस्मादन्यन्न विद्यते ।  
सर्वज्ञ सर्वदृक्शुद्धस्तस्मै ज्ञेयात्मने नम ॥ १ ॥

पदवाक्यप्रमाणज्ञैर्दीपभूतै प्रकाशितम् ।  
ब्रह्म वेदरहस्य यैस्तान्नित्य प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥

यद्वाक्सूर्याशुसपातप्रणष्टध्वान्तकल्मष ।  
प्रणम्य तान्गुरुन्वक्ष्ये ब्रह्मविद्याविनिश्चयम् ॥ ३ ॥

आत्मलाभात्परो नान्यो लाभ कश्चन विद्यते ।  
यदर्थं वेदवादाश्च स्मार्ताश्चापि तु या क्रिया ॥ ४ ॥

आत्मार्थोऽपि हि यो लाभ सुखायेष्टो विपर्यय ।  
आत्मलाभ पर प्रोक्तो नित्यत्वाद्ब्रह्मवेदिभि ॥ ५ ॥

स्वय लब्धस्वभावत्वाद्लाभस्तस्य न चान्यत ।  
अन्यापेक्षस्तु यो लाभ सोऽन्यदृष्टिसमुद्भव ॥ ६ ॥

अन्यदृष्टिस्त्वविद्या स्यात्तन्नाशो मोक्ष उच्यते ।  
ज्ञानैव तु सोऽपि स्याद्विरोधित्वान्न कर्मणा ॥ ७ ॥

कर्मकार्यस्त्वनित्य स्यादविद्याकामकारण ।

प्रमाण वेद एवात्र ज्ञानस्याधिगमे स्मृत ॥ ८ ॥

ज्ञानैकार्थपरत्वात्त वाक्यमेक ततो विदु ।

एकन्व ह्यात्मनो ज्ञेय वाक्यार्थप्रतिपत्तित ॥ ९ ॥

वाच्यभेदात्त तद्भेद कल्प्यो वाच्योऽपि तच्छ्रुते ।

त्रय त्वेतत्तत प्रोक्त रूप नाम च कर्म च ॥ १० ॥

असदेतन्नय यस्मादन्योन्येन हि कल्पितम् ।

कृतो वर्णो यथाशब्दाच्छ्रुताऽन्यत्र धिया बहि ॥ ११ ॥

दृष्ट चापि यथा रूप बुद्धे शब्दाय कल्पते ।

एवमेतज्जगत्सर्व भ्रान्तिबुद्धिविकल्पितम् ॥ १२ ॥

असदेतत्ततो युक्त सच्चिन्मात्र न कल्पितम् ।

वेदश्चापि स एवाद्यो वेद्य चान्यत्तु कल्पितम् ॥ १३ ॥

येन वेत्ति स वेद स्यात्स्वप्ने सर्व तु मायया ।

येन पश्यति तच्चक्षु शृणोति श्रोत्रमुच्यते ॥ १४ ॥

येन स्वप्नगतो वक्ति सा वाग्घ्राण तथैव च ।

रसनस्पर्शने चैव मनश्चान्यत्तथेन्द्रियम् ॥ १५ ॥

कल्प्योपाधिभिरेवैतद्भिन्नं ज्ञानमनेकधा ।

आधिभेदाद्यथा भेदो मणरेकस्य जायते ॥ १६ ॥

जाग्रतश्च तथा भेदो ज्ञानस्यास्य विकल्पित ।

बुद्धिस्थ व्याकरोत्यर्थं भ्रान्त्या तृष्णोद्भवक्रिय ॥ १७ ॥

स्वप्ने तद्वत्प्रबोधे यो बहिश्चान्तस्तथैव च ।

आलेख्याध्ययने यद्वत्तदन्योन्यधियोद्भवम् ॥ १८ ॥

यदाय कल्पयेद्भेदं तत्कामं सन्यथाक्रतु ।

यत्कामस्तत्क्रतुर्भूत्वा कृतं यत्तत्प्रपद्यते ॥ १९ ॥

अविद्याप्रभव सर्वमसत्तस्मादिदं जगत् ।

तद्वता दृश्यते यस्मात्सुषुप्ते न च गृह्यते ॥ २० ॥

विद्याविद्ये श्रुतिप्रोक्ते एकत्वान्यधियौ हि न ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शास्त्रे विद्या विधीयते ॥ २१ ॥

चित्ते ह्यादर्शवद्यस्माच्छुद्धे विद्या प्रकाशते ।

यमैर्नित्यैश्च नियमैस्तपोभिस्तस्य शोधनम् ॥ २२ ॥

शारीरादि तप कुर्यात्तद्विशुद्धयर्थमुत्तमम् ।

मनआदिसमाधानं तत्तद्देहविशोषणम् ॥ २३ ॥

मनसश्चेन्द्रियाणा च ह्यैकाग्रथ परम तप ।  
तज्ज्याय सर्वधर्मेभ्य स धर्म पर उच्यते ॥ २४ ॥

दृष्ट जागरित विद्यात्स्मृत स्वप्न तदेव तु ।  
सुषुप्त तदभाव च स्वमात्मान पर पदम् ॥ २५ ॥

सुषुप्त्यार्य तमोऽज्ञान बीज स्वप्नप्रबोधयो ।  
स्वात्मबोधप्रदग्ध स्याद्वीज दग्ध यथाभवम् ॥ २६ ॥

तदेवैक त्रिधा ज्ञेय मायाबीज पुन क्रमात् ।  
मायाव्यात्माविकारोऽपि बहुधैको जलार्कवत् ॥ २७ ॥

बीज चैक यथा भिन्न प्राणस्वप्नादिभिस्तथा ।  
स्वप्नजाग्रच्छरीरेषु तद्वच्चात्मा जलेन्दुवत् ॥ २८ ॥

मायाहस्तिनमारुह्य मायाव्येको यथा व्रजेत् ।  
आगच्छस्तद्वदेवात्मा प्राणस्वप्नादिगोचर ॥ २९ ॥

न हस्ती न तदारूढो मायाव्यन्यो यथा स्थित ।  
न प्राणादि न तद्दृष्टा तथा ज्ञोऽन्य सदादृशि ॥ ३० ॥

अबद्धचक्षुषो नास्ति माया मायाविनोऽपि वा ।  
बद्धाक्षस्यैव सा मायामायाव्येव ततो भवेत् ॥ ३१ ॥

साक्षादेव स विज्ञेय साक्षादात्मेति च श्रुते ।  
मिद्यते हृदयग्रन्थिर्न चेदित्यादित श्रुते ॥ ३२ ॥

अशब्दादित्वतो नास्य ग्रहण चेन्द्रियैर्भवेत् ।  
सुखादिभ्यस्तथान्यत्वाद्बुद्ध्या वापि कथं भवेत् ॥ ३३ ॥

अदृश्योऽपि यथा राहुश्चन्द्रे बिम्ब यथाम्भसि ।  
सर्वगोऽपि तथैवात्मा बुद्धावेव स गृह्यते ॥ ३४ ॥

मानोर्बिम्ब यथा चौष्ण्य जले दृष्ट न चाम्भस ।  
बुद्धौ बोधो न तद्धर्मस्तथैव ख्याद्विधर्मत ॥ ३५ ॥

चक्षुर्युक्ता धियो वृत्तिर्या ता पश्यन्नलुप्तदृक् ।  
दृष्टेर्द्रष्टा भवेदात्मा श्रुते श्रोता तथा श्रुते ॥ ३६ ॥

केवला मनसो वृत्ति पश्यन्मन्ता मतेरज ।  
विज्ञातालुप्तशक्तित्वात्तथा शास्त्रान्न हीत्यत ॥ ३७ ॥

ध्यायतीत्यविकारित्व तथा लेलायतीत्यपि ।  
अत्र स्तेनेति शुद्धत्व तथानन्वागतश्रुते ॥ ३८ ॥

शक्त्यलोपात्सुषुप्ते ज्ञस्तथा बोधेऽविकारत ।  
ज्ञेयस्यैव विशेषस्तु यत्र वेति श्रुतेर्मत ॥ ३९ ॥



व्यवधानाद्धि पारोक्ष्य लोकदृष्टेरनात्मन ।  
दृष्टेरात्मस्वरूपत्वात्प्रत्यक्ष ब्रह्म यत्स्मृतम् ॥ ४० ॥

न हि दीपान्तरापेक्षा यद्वद्दीपप्रकाशने ।  
बोधस्यात्मस्वरूपत्वान्न बोधोऽन्यस्तथेष्यते ॥ ४१ ॥

विषयत्व विकारित्व नानात्व वा न हीष्यते ।  
न हेयो नाप्युपादेय आत्मा नान्येन वा तत ॥ ४२ ॥

सबाह्याभ्यन्तरोऽजीर्णो जन्ममृत्युजरातिग ।  
अहमात्मेति यो वेत्ति कुतो न्वेव बिभेति स ॥ ४३ ॥

प्रागेवैतद्विधे कर्म वर्णित्वादेरपोहनात् ।  
तदस्थूलादिशास्त्रेभ्यस्तत्त्वमेवेति निश्चयात् ॥ ४४ ॥

पूर्वदेहपरित्यागे जात्यादीना प्रहाणत ।  
देहस्यैव तु जात्यादिस्तस्याप्येव ह्यनात्मता ॥ ४५ ॥

ममाह चेत्यतोऽविद्या शरीरादिष्वनात्मसु ।  
आत्मज्ञानेन हेया स्यादसुराणामिति श्रुते ॥ ४६ ॥

दशाहाशौचकार्याणा पारिव्राज्ये निवर्तनम् ।  
यथा ज्ञानस्य समाप्तौ तद्वज्जात्यादिकर्मणाम् ॥ ४७ ॥

यत्कामस्तत्कृतुर्भूत्वा कृत त्वङ्ग प्रपद्यते ।  
यदा स्वात्मदृश कामा प्रमुच्यन्तेऽमृतस्तदा ॥ ४८ ॥

आत्मरूपविधे कार्यं क्रियादिभ्यो निवर्तनम् ।  
न साध्य साधन वात्मा नित्यतृप्तश्रुतेर्मत ॥ ४९ ॥

उत्पाद्याप्यविकार्याणि सस्कार्यं च क्रियाफलम् ।  
नातोऽन्यत्कमेणा कार्यं त्यजेत्तस्मात्ससाधनम् ॥ ५० ॥

नापान्तत्वादनित्यत्वादात्मार्थत्वाच्च या बहि ।  
सहत्यात्मनि ता प्रीतिं सत्यार्थीं गुरुमाश्रयेत् ॥ ५१ ॥

शान्तं प्राङ्ग तथा मुक्तं निष्क्रियं ब्रह्मणि स्थितम् ।  
श्रुतेराचार्यवान्वेदं तद्विद्धीति स्मृतेस्तथा ॥ ५२ ॥

स गुरुस्तारयेद्युक्तं शिष्यं शिष्यगुणान्वितम् ।  
ब्रह्मविद्याप्लवेनाशु स्वान्तध्वान्तमहोदधिम् ॥ ५३ ॥

दृष्टिं स्पृष्टिं श्रुतिर्घ्रातिर्मतिर्विज्ञातिरेव च ।  
शक्तयोऽन्याश्च भिद्यन्ते चिद्रूपत्वेऽप्युपाधिभिः ॥ ५४ ॥

अपायोद्भूतिहीनाभिर्नित्यं दीप्यन्विर्यथा ।  
सर्वदृक्सर्वगं शुद्धं सर्वं जानाति सर्वदा ॥ ५५ ॥

अन्यदृष्टि शरीरस्थस्तावन्मात्रो ह्यविद्यया ।  
जलेन्द्राद्युपमाभिस्तु तद्धर्मा च विभाव्यते ॥ ५६ ॥

दृष्ट्वा बाह्य निमील्याथ स्मृत्वा तत्प्रविहाय च ।  
अथोन्मील्यात्मनो दृष्टिं ब्रह्म प्राप्नोत्यनध्वग ॥ ५७ ॥

प्राणाद्येव त्रिक हित्वा तीर्णोऽज्ञानमहोदधिम् ।  
स्वात्मस्थो निर्गुण शुद्धो बुद्धो मुक्त स्वतो हि स ॥

अजोऽह चामरोऽमृत्युरजरोऽमय एव च ।  
सर्वज्ञ सर्वदृक्शुद्ध इति बुद्धो न जायते ॥ ५९ ॥

पूर्वोक्त यत्तमोबीज तन्नास्तीति विनिश्चय ।  
तदभावे कुतो जन्म ब्रह्मैकत्व विजानत ॥ ६० ॥

क्षीरात्सर्पिर्यथोद्धृत्य क्षिप्त तस्मिन्न पूर्ववत् ।  
बुद्ध्यादेर्ज्ञस्तथासत्यान्न देही पूर्ववद्भवेत् ॥ ६१ ॥

सत्य ज्ञानमनन्त च रसादे पञ्चकात्परम् ।  
स्यामदृश्यादिशास्त्रोक्तमह ब्रह्मेति निर्भय ॥ ६२ ॥

यस्माद्गीता प्रवर्तन्ते वाङ्मन पावकादय ।  
तदात्मानन्दतस्वज्ञो न बिभेति कुतश्चन ॥ ६३ ॥

नामादिभ्य परे भूम्नि स्वाराज्ये चेत्स्थितोऽद्वये ।  
प्रणमेत्क तदात्मज्ञो न कार्यं कर्मणा तदा ॥ ६४ ॥

विराड्रैश्वानरो बाह्य स्मरन्नन्त प्रजापति ।  
प्रविलीने तु सर्वस्मिन्प्राज्ञोऽव्याकृतमुच्यते ॥ ६५ ॥

वाचारम्भणमात्रत्वात्सुषुप्तादि त्रिक त्वसत् ।  
सत्यो ज्ञश्चाहमित्येव सत्यसधो विमुच्यते ॥ ६६ ॥

भारूपत्वाद्यथा भानोर्नाहोरात्रे तथैव तु ।  
ज्ञानाज्ञाने न मे स्याता चिद्रूपत्वाविशेषत ॥ ६७ ॥

शास्त्रस्यानतिशङ्क्यत्वाद्ब्रह्मैव स्यामह सदा ।  
ब्रह्मणो मे न हेय स्याद्बाह्य वेति च सस्मरेत् ॥

अहमेव च भूतेषु सर्वेष्वेको नभो यथा ।  
मयि सर्वाणि भूतानि पश्यन्नेव न जायते ॥ ६९ ॥

न बाह्य मध्यतो घान्तर्विद्यतेऽन्यत्स्वत क्वचित् ।  
अबाह्यान्त श्रुते किञ्चित्तस्माच्छुद्ध स्वयप्रभ ॥ ७० ॥

नेति नेत्यादिशास्त्रेभ्य प्रपञ्चोपशमोऽद्वय ।  
अविज्ञातादिशास्त्राच्च नैव ज्ञेयो ह्यतोऽन्यथा ॥ ७१ ॥

सर्वखात्माहमेवेति ब्रह्म चेद्विदित परम् ।  
स आत्मा सर्वभूतानामात्मा ह्येषामिति श्रुते ॥ ७२ ॥

जीवश्चेत्परमात्मानं स्वात्मानं देवमञ्जसा ।  
देवोपास्य स देवानां पशुत्वाच्च निवर्तते ॥ ७३ ॥

अहमेव सदात्मज्ञं शून्यस्त्वन्यैर्यथाम्बरम् ।  
इत्येव सत्यसधत्वादसद्भानां बध्यते ॥ ७४ ॥

कृपणास्तेऽन्यथैवातो विदुर्ब्रह्म परं हि ये ।  
स्वराड्योऽनन्यदृक्स्वस्थस्तस्य देवा असन्वशे ॥ ७५ ॥

हित्वा जात्यादिसबन्धं वाचोऽन्यां सह कर्मभिः ।  
ओमित्येव स्वमात्मानं सर्वं शुद्धं प्रपद्यथ ॥ ७६ ॥

सेतुं सर्वव्यवस्थानामहोरात्राविवर्जितम् ।  
तिर्यग्ूर्ध्वमधः सर्वं सकृज्ज्योतिरनामयम् ॥ ७७ ॥

धर्माधर्मविनिर्मुक्तं भूतभव्यात्कृताकृतात् ।  
स्वमात्मानं परं विद्याद्विमुक्तं सर्वबन्धनैः ॥ ७८ ॥

अकुर्वन्सर्वकृच्छ्रुद्धस्तिष्ठन्नत्येति धावत ।  
मायया सर्वशक्तित्वादजं सन्बहुधा मतं ॥ ७९ ॥

राजवत्साक्षिमात्रत्वात्सानिध्यान्नामको यथा ।  
भ्रामयञ्जगदात्माह निष्क्रियोऽकारकोऽद्वय ॥ ८० ॥

निर्गुण निष्क्रिय नित्य निर्द्वन्द्व यन्निरामयम् ।  
शुद्ध बुद्ध तथा मुक्त तद्ब्रह्मास्मीति धारयेत् ॥ ८१ ॥

बन्ध मोक्ष च सर्वं यत इदमुभय हेयमेक द्वय च  
ज्ञेयाज्ञेयाभ्यतीत परममधिगत तत्त्वमेक विशुद्धम् ।  
विज्ञायैतद्यथावच्छ्रुतिमुनिगदित शोकमोहावतीत  
सर्वज्ञ सर्वकृत्स्याद्भवभयरहितो ब्राह्मणोऽवाप्तकृत्य ॥

न स्वयं स्वस्य नान्यस्य नान्यश्चात्मा च हेयग ।  
उपादेयो न चाप्येवमिति सम्यङ्मति स्मृता ॥ ८३ ॥

आत्मप्रत्यायिका ह्येषा सर्ववेदान्तगोचरा ।  
ज्ञात्वैता हि विमुच्यन्ते सर्वससारबन्धनै ॥ ८४ ॥

रहस्य सर्ववेदाना देवाना चापि दुर्लभम् ।  
पवित्र परम ह्येतत्तदेतत्सप्रकाशितम् ॥ ८५ ॥

नैतद्देयमशान्ताय रहस्यं ज्ञानमुत्तमम् ।  
विरक्ताय प्रदातव्यं शिष्यायानुगताय च ॥ ८६ ॥

ददतश्चात्मनो ज्ञान निष्कयोऽन्यो न विद्यते ।  
ज्ञानमिच्छस्तरेत्तस्माद्युक्त शिष्यगुणै सदा ॥ ८७ ॥

ज्ञान ज्ञेय तथा ज्ञाता यस्मादन्यन्न विद्यते ।  
सर्वज्ञ सर्वशक्तिर्यस्तस्मै ज्ञानात्मने नम ॥ ८८ ॥

विद्यया तारिता सो यैर्जन्ममृत्युमहोदधिम् ।  
सर्वज्ञेभ्यो नमस्तेभ्यो गुरुभ्योऽज्ञानसकुलम् ॥ ८९ ॥

### तन्वमतिप्रकरणम् ॥

येनात्मना विलीयन्त उद्भवन्ति च वृत्तय ।  
नित्यावगतये तस्मै नमो धीप्रत्यगात्मने ॥ १ ॥

प्रमथ्य वज्रोपमयुक्तिसभृतै  
श्रुतेररातीञ्शतशो वचोबलै ।  
ररक्ष वेदार्थनिधि विशालधी  
नेमो यतीन्द्राय गुरोर्गरीयसे ॥ २ ॥

नित्यमुक्त सदेवास्मीत्येव चेन्न भवेन्मति ।  
किमर्थं श्रावयत्येव मातृवच्छ्रुतिराहता ॥ ३ ॥

सिद्धादेवाहमित्यस्माद्युष्मद्धर्मो निषिध्यते ।  
रज्ज्वामिवाहिधीर्युक्त्या तत्त्वमित्यादिशासनै ॥ ४ ॥

शास्त्रप्रामाण्यतो ज्ञेया धर्मादेरस्तित्ता यथा ।  
विषापोहो यथा ध्यानाग्निवृत्ति पाप्मनस्तथा ॥ ५ ॥

सद्ब्रह्माह करोमीति प्रत्यवायात्मसाक्षिकौ ।  
तयोरज्ञानजस्यैव त्यागो युक्ततरो मत ॥ ६ ॥

सदस्मीति प्रमाणोत्था धीरन्या तन्निभोद्भवा ।  
प्रत्यक्षादिनिभा वापि बाध्यते दिग्भ्रमादिवत् ॥ ७ ॥

कर्ता भोक्तेति यच्छास्त्र लोकबुद्ध्यनुवादि तत् ।  
सदस्मीति श्रुतेर्जाता बाध्यतेऽन्या तयैव धी ॥ ८ ॥

सदेव त्वमसीत्युक्ते नात्मनो मुक्तता स्थिरा ।  
प्रवर्तते प्रसचक्षामतो युक्त्यानुचिन्तयेत् ॥ ९ ॥

सकृदुक्तं न गृह्णाति वाक्यार्थज्ञोऽपि यो भवेत् ।  
अपेक्षतेऽत एवान्यदवोचाम द्वयं हि तत् ॥ १० ॥

नियोगोऽप्रतिपन्नत्वात्कर्मणा स यथा भवेत् ।  
अविरुद्धो भवेत्तावद्यावत्सवेद्यतादृढा ॥ ११ ॥



चेष्टित च यतो मिथ्या स्वच्छन्द प्रतिपद्यते ।  
प्रसख्यानमत कार्यं यावदात्मानुभूयते ॥ १२ ॥

सदस्मीति च विज्ञानमक्षजो बाधते ध्रुवम् ।  
शब्दोत्थ दृढसस्कारो दोषैश्चाकृष्यते बहि ॥ १३ ॥

श्रुतानुमानजन्मानौ सामान्यविषयौ यत ।  
प्रत्ययावक्षजोऽवश्य विशेषार्थो निवारयेत् ॥ १४ ॥

वाक्यार्थप्रत्ययी कश्चिन्निर्दु खो नोपलभ्यते ।  
यदि वा दृश्यते कश्चिद्वाक्यार्थश्रुतिमात्रत ॥ १५ ॥

निर्दु खोऽतीतदेहेषु कृतभावोऽनुमीयते ।  
चर्या नो शास्त्रसवेद्या स्यादनिष्ट तथा सति ॥ १६ ॥

सदसीति फल चोक्त्वा विधेय साधन यत ।  
न तदन्यत्प्रसख्यानात्प्रसिद्धार्थमिहेष्यते ॥ १७ ॥

तस्मादनुभवयैव प्रसचक्षीत यत्नत ।  
त्यजन्साधनतत्साध्यविरुद्ध शमनादिमान् ॥ १८ ॥

नैतदेव रहस्याना नेति नेत्यवसानत ।  
क्रियासाध्य पुरा श्राव्य न मोक्षो नित्यसिद्धत ॥ १९ ॥

पुत्रदु ख यथाध्यस्त पित्रा दु खे स्व आत्मनि ।  
अहकर्ता तथाध्यस्तो नित्यादु खे स्व आत्मनि ॥

सोऽध्यासो नेति नेतीति प्राप्तवत्प्रतिषिध्यते ।  
भूयोऽभ्यासविधि कश्चित्कुतश्चिन्नोपपद्यते ॥ २१ ॥

आत्मनीह यथाध्यास प्रतिषेधस्तथैव च ।  
मलाध्यासनिषेधौ खे क्रियेते च यथाबुधै ॥ २२ ॥

प्राप्तश्चेत्प्रतिषिध्येत मोक्षोऽनित्यो भवेद्भुवम् ।  
अतोऽप्राप्तनिषेधोऽय दिव्यग्निचयनादिवत् ॥ २३ ॥

सभाव्यो गोचरे शब्द प्रत्ययो वा न चान्यथा ।  
न सभाव्यौ तदात्मत्वादहकर्तुस्तथैव च ॥ २४ ॥

अहकर्त्रात्मनि न्यस्त चैतन्ये कर्तृतादि यत् ।  
नेति नेतीति तत्सर्व साहकर्त्रा निषिध्यते ॥ २५ ॥

उपलब्धि स्वयज्योतिर्दृशि प्रत्यक्सदाक्रिय ।  
साक्षात्सर्वान्तर साक्षी चेता नित्योऽगुणोऽद्वय ॥

सनिधौ सर्वदा तस्य स्यात्तदाभोऽभिमानकृत् ।  
आत्मात्मीय द्वय चात स्यादहममगोचर ॥ २७ ॥

जातिकर्मादिमत्त्वाद्धि तस्मिञ्शब्दास्त्वहकृति ।  
न कश्चिद्वर्तते शब्दस्तदभावात्स्व आत्मनि ॥ २८ ॥

आभासो यत्र तत्रैव शब्दा प्रत्यग्दर्शि स्थिता ।  
लक्षयेयुर्न साक्षात्तमभिदध्यु कथंचन ॥ २९ ॥

न ह्यजात्यादिमान्कश्चिदर्थं शब्दैर्निरूप्यते ।  
आत्माभासो यथाहकृदात्मशब्दैस्तथोच्यते ॥ ३० ॥

उल्मुकादौ यथान्यर्था परार्थत्वान्न चाञ्जसा ।  
मुखादन्यो मुखाभासो यथादर्शानुकारत ॥ ३१ ॥

आभासान्मुखमप्येवमादर्शाननुवर्तनात् ।  
अहकृत्यात्मनिर्भासो मुखाभासवदिष्यते ॥ ३२ ॥

मुखवत्स्मृत आत्मान्योऽविविक्तौ तौ तथैव च ।  
ससारी च स इत्येक आभासो यस्त्वहकृति ॥ ३३ ॥

वस्तु ऋणाया स्मृतेरन्यन्माधुर्यादि च कारणम् ।  
हैकदेशो विकारो वा तदाभासाश्रय परे ॥ ३४ ॥

अहकर्तैव ससारी स्वतन्त्र इति केचन ।  
अहकारादिसतान ससारी नान्वयी पृथक् ॥ ३५ ॥

इत्येव सौगता आहुस्तत्र न्यायो विचार्यताम् ।  
ससारिणा कथा त्वास्ता प्रकृत त्वधुनोच्यते ॥ ३६ ॥

मुखाभासो य आदर्शो धर्मो नान्यतरस्य स ।  
द्वयोरेकस्य चेद्धर्मो विविकेऽन्यतरे भवेत् ॥ ३७ ॥

मुखेन व्यपदेशात्स मुखस्यैवेति चेन्मतम् ।  
नादर्शानुविधानाच्च मुखे सत्यप्यभावत ॥ ३८ ॥

द्वयोरेवेति चेत्तन्न द्वयोरेवाप्यदर्शनात् ।  
अदृश्यस्य सतो दृष्टि स्याद्राहोश्चन्द्रसूर्ययो ॥ ३९ ॥

राहो प्रागेव वस्तुत्व सिद्ध शास्त्रप्रमाणत ।  
छायापक्षे त्ववस्तुत्व तस्य स्यात्पूर्वयुक्ति ॥ ४० ॥

छायाक्रान्तेर्निषेधोऽय न तु वस्तुत्वसाधक ।  
न ह्यर्थान्तरनिष्ठ सद्वाक्यमर्थान्तर वदेत् ॥ ४१ ॥

माधुर्यादि च यत्कार्यमुष्णद्रव्याद्यसेवनात् ।  
छायाया न त्वदृष्टत्वादपामेव च दर्शनात् ॥ ४२ ॥

आत्माभासाश्रयाश्चैव मुखाभासाश्रया यथा ।  
गम्यन्ते शास्त्रयुक्तिभ्यामाभासासत्त्वमेव च ॥ ४३ ॥

न दशेरविकारित्वादाभासस्याप्यवस्तुत ।  
नाचितित्वादहकर्तुं कस्य ससारिता भवेत् ॥ ४४ ॥

अविद्यामात्र एवात ससारोऽस्त्वविवेकत ।  
कूटस्थेनात्मना नित्यमात्मवानात्मनीव स ॥ ४५ ॥

रज्जुसर्पो यथा रज्ज्वा सात्मक प्राग्विवेकत ।  
अवस्तुसन्नपि ह्येष कूटस्थेनात्मना तथा ॥ ४६ ॥

आत्माभासाश्रयश्चात्मा प्रत्ययै स्वैर्विकारवान् ।  
सुखी दुःखी च ससारी नित्य एवेति केचन ॥ ४७ ॥

आत्माभासापरिज्ञानाद्याथात्म्येन विमोहिता ।  
अहकर्तारमात्मेति मन्यन्ते ते निरागमा ॥ ४८ ॥

ससारो वस्तुसस्तेषा कर्तृभोर्कर्तृत्वलक्षण ।  
आत्माभासाश्रयाज्ञानात्ससरन्त्यविवेकत ॥ ४९ ॥

चैतन्याभासता बुद्धेरात्मनस्तत्स्वरूपता ।  
स्याच्चेत्त ज्ञानशब्दैश्च वेद शास्तोति युज्यते ॥ ५० ॥

प्रकृतिप्रत्ययार्थौ यौ भिन्नावेकाश्रयौ यथा ।  
करोति गच्छतीत्यादौ दृष्टौ लोकप्रसिद्धित ॥ ५१ ॥

नानयोर्द्वाश्रयत्व तु लोके दृष्टं स्मृतौ तथा ।  
जानात्यर्थेषु को हेतुर्द्वाश्रयत्वे निगद्यताम् ॥ ५२ ॥

आत्माभासस्तु तिङ्वाच्यो धात्वर्थश्च श्रिय क्रिया ।  
उभय चाविवेकेन जानातीत्युच्यते मृषा ॥ ५३ ॥

न बुद्धेरवबोधोऽस्ति नात्मनो विद्यते क्रिया ।  
अतो नान्यतरस्यापि जानातीति च युज्यते ॥ ५४ ॥

नाप्यतो भावशब्देन ज्ञप्तिरित्यपि युज्यते ।  
न ह्यात्मा विक्रियामात्रं नित्यं आत्मेति शासनात् ॥

न बुद्धेर्बुद्धिवाच्यत्वकरणं न ह्यकर्तृकम् ।  
नापि ज्ञायत इत्येव कर्मशब्दैर्निरूप्यते ॥ ५६ ॥

न येषामेक एवात्मा निर्दुःखोऽविक्रियः सदा ।  
तेषां स्याच्छब्दवाच्यत्वज्ञेयत्वचात्मनः सदा ॥ ५७ ॥

यदाहकर्तुरात्मत्वतदा शब्दार्थमुख्यता ।  
नाशनायादिमत्त्वात्तु श्रुतौ तस्यात्मतेष्यते ॥ ५८ ॥

हन्त तर्हि न मुख्यार्थो नापि गौणः कथञ्चन ।  
जानातीत्यादिशब्दस्य गतिर्वाच्या तथापि तु ॥ ५९ ॥

शब्दानामयथार्थत्वे वेदस्याप्यप्रमाणता ।

सा च नेष्टा ततो प्राह्या गतिरस्य प्रसिद्धित ॥ ६० ॥

प्रसिद्धिर्मूढलोकस्य यदि प्राह्या निरात्मता ।

लौकायतिकसिद्धान्त स चानिष्ट प्रसज्यते ॥ ६१ ॥

अभियुक्तप्रसिद्धिश्चेत्पूर्ववहुर्विवेकता ।

गतिशून्य न वेदोऽय प्रमाण सचदत्युत ॥ ६२ ॥

आदर्शमुखसामान्य मुखस्येष्ट हि मानवै ।

मुखस्य प्रतिबिम्बो हि मुखाकारेण दृश्यते ॥ ६३ ॥

यत्र यस्यावभासस्तु तयोरेवाविवेकत ।

जानातीति क्रिया सर्वो लोको वक्ति स्वभावत ॥ ६४ ॥

बुद्धे कर्तृत्वमध्यस्य जानातीति ज्ञ उच्यते ।

तथा चैतन्यमध्यस्य ज्ञत्व बुद्धेरिहोच्यते ॥ ६५ ॥

स्वरूप चात्मनो ज्ञान नित्य ज्योति श्रुतेर्यत ।

न बुद्ध्या क्रियते तस्मादात्मनान्येन वा सदा ॥ ६६ ॥

देहेऽहप्रत्ययो यद्वज्जानातीति च लौकिका ।

वदन्ति ज्ञानकर्तृत्व तद्वद्बुद्धेस्तथात्मन ॥ ६७ ॥

बौद्धैस्तु प्रत्ययैरेव क्रियमाणैश्च चिन्त्रिमै ।  
मोहिता क्रियते ज्ञानमित्याहुस्तार्किका जना ॥ ६८ ॥

तस्माज्ज्ञाभासबुद्धीनामविधेकात्प्रवर्तिता ।  
जानातीत्यादिशब्दश्च प्रत्ययो या च तत्स्मृति ॥ ६९ ॥

आदर्शानुविधायित्व छायाया अस्यते मुखे ।  
बुद्धिधर्मानुकारित्व ज्ञाभासस्य तथेष्यते ॥ ७० ॥

बुद्धेस्तु प्रत्ययास्तस्मादात्माभासेन दीपिता ।  
ग्राहका इव भासन्ते दहन्तीवोल्मुकादय ॥ ७१ ॥

स्वयमेवावभास्यन्ते ग्राहका स्वयमेव च ।  
इत्येव ग्राहकास्तित्व प्रतिषेधन्ति सौगता ॥ ७२ ॥

यद्येव नान्यदृश्यास्ते किं तद्धारणमुच्यताम् ।  
भावाभावौ हि तेषा यौ नान्यग्राह्यौ सता यदि ॥ ७३ ॥

अन्वयी ग्राहकस्तेषामित्येतदपि तत्समम् ।  
अचित्त्वस्यापि तुल्यत्वादन्यस्मिन्ग्राहके सति ॥ ७४ ॥

अध्यक्षस्य समीपे तु सिद्धि स्यादिति चेन्मतम् ।  
नाध्यक्षेऽनुपकारित्वादन्यत्रापि प्रसङ्गत ॥ ७५ ॥



अर्थी दु खी च य श्रोता स त्वध्यक्षोऽथवेतर ।  
अध्यक्षस्य च दु खित्वमर्थित्व च न ते मतम् ॥ ७६ ॥

कर्ताध्यक्ष सदस्मीति नैव सद्ग्रहमर्हति ।  
सदेवासीति मिथ्योक्ति श्रुतेरपि न युज्यते ॥ ७७ ॥

अविविच्योभय वक्ति श्रुतिश्चेत्स्याद्ग्रहस्तथा ।  
अस्मदस्तु विविच्यैव त्वमेवेति वदेद्यदि ॥ ७८ ॥

प्रत्ययान्वयिनिष्ठत्वमुक्तदोष प्रसज्यते ।  
त्वमित्यध्यक्षनिष्ठश्चेद्ग्रहमध्यक्षयो कथम् ॥ ७९ ॥

सबन्धो वाच्य एवात्र येन त्वमिति लक्षयेत् ।  
द्रष्टृदृश्यत्वसबन्धो यद्यध्यक्षेऽक्रिये कथम् ॥ ८० ॥

अक्रियत्वेऽपि तादात्म्यमध्यक्षस्य भवेद्यदि ।  
आत्माध्यक्षो ममास्तीति सबन्धाग्रहणेन धी ॥ ८१ ॥

सबन्धग्रहण शास्त्रादिति चेन्मन्यसे न हि ।  
पूर्वोक्ता स्युस्त्रयो दोषा ग्रहो वा स्यान्ममेति च ॥ ८२ ॥

अट्टशिर्दृशिरूपेण भाति बुद्धिर्यदा तदा ।  
प्रत्यया अपि तस्या स्युस्तप्तायोविस्फुलिङ्गवत् ॥ ८३ ॥

आभासस्तदभावश्च दृशे सीम्नो न चान्यथा ।  
लोकस्य युक्तित स्याता तद्ग्रहश्च तथा सति ॥ ८४ ॥

नन्वेव दृशिसक्रान्तिरय पिण्डेऽश्विनद्भवेत् ।  
मुखाभासवदित्येतदादर्शं तन्निराकृतम् ॥ ८५ ॥

कृष्णायो लोहिताभासमित्येतदृष्टमुच्यते ।  
दृष्टदार्ष्टान्ततुल्यत्व न तु सर्वात्मना क्वचित् ॥ ८६ ॥

तथैव चेतनाभास चित्त चेतन्यवद्भवेत् ।  
मुखाभासो यथादर्श आभासश्चोदितो मृषा ॥ ८७ ॥

चित्त चेतनमित्येतच्छास्त्रयुक्तिविवर्जितम् ।  
देहस्यापि प्रसङ्ग स्याच्चक्षुरादेस्तथैव च ॥ ८८ ॥

तदप्यस्त्विति चेत्तन्न लौकायतिकसगते ।  
न च धीर्दृशिरस्मीति यद्याभासो न चेतसि ॥ ८९ ॥

सदस्मीति धियोऽभावे व्यर्थं स्यात्तत्त्वमस्यपि ।  
युष्मदस्मद्विभागज्ञे स्यादर्धवदिद वच ॥ ९० ॥

ममेदप्रत्ययौ ज्ञेयौ युष्मद्येव न सशय ।  
अहमित्यस्मदीष्ट स्यादयमस्मीति चोभयो ॥ ९१ ॥

अन्योन्यापेक्षया तेषा प्रधानगुणतेष्यते ।  
 विशेषणविशेष्यत्व तथा ग्राह्य हि युक्तित ॥ ९२ ॥  
 ममेद द्वयमप्येतन्मध्यमस्य विशेषणम् ।  
 धनी गोमान्यथा तद्वद्देहोऽहकर्तुरेव च ॥ ९३ ॥  
 बुद्धयारूढ सदा सर्व साहकर्ता च साक्षिणः ।  
 तस्मात्सर्वावभासो ज्ञ किञ्चिदप्यस्पृशन्सदा ॥ ९४ ॥  
 प्रतिलोममिद सर्व यथोक्त लोकबुद्धित ।  
 अविवेकधियामस्ति नास्ति सर्व विवेकिनाम् ॥ ९५ ॥  
 अन्वयव्यतिरेकौ हि पदार्थस्य पदस्य च ।  
 स्यादेतदहमित्यत्र युक्तिरेवावधारणे ॥ ९६ ॥  
 नाद्राक्षमहमित्यस्मिन्सुषुप्तेऽन्यन्मनागपि ।  
 न वारयति दृष्टिं स्वा प्रत्यय तु निषेधति ॥ ९७ ॥  
 स्वय ज्योतिर्न हि द्रष्टुरित्येव सविदोऽस्तिताम् ।  
 कौटस्थ्य च तथा तस्या प्रत्ययस्य तु लुप्तताम् ।  
 स्वयमेवाब्रवीच्छास्त्र प्रत्ययावगती पृथक् ॥ ९८ ॥  
 एव विज्ञातवाक्यार्थे श्रुतिलोकप्रसिद्धित ।  
 श्रुतिस्तत्त्वमसीत्याह श्रोतुर्माहापनुत्तये ॥ ९९ ॥

ब्रह्मा दाशरथेर्यद्वदुक्त्यैवापानुदत्तम् ।  
तस्य विष्णुत्वसबोधे न यत्नान्तरमूचिवान् ॥ १०० ॥

अहशब्दस्य या निष्ठा ज्योतिषि प्रत्यगात्मनि ।  
सैवोक्ता सदसीत्येव फल तत्र विमुक्तता ॥ १०१ ॥

श्रुतमान्नेण चेन्न स्यात्कार्यं तत्र भवेद्भुवम् ।  
व्यवहारात्पुरापीष्ट सद्भाव स्वयमात्मन ॥ १०२ ॥

अशनायादिनिर्मुक्त्यै तत्काला जायते प्रमा ।  
तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थे त्रिषु कालेष्वसशय ॥ १०३ ॥

प्रतिबन्धविहीनत्वात्स्वय चानुभवात्मन ।  
जायेतैव प्रमा तत्र स्वात्मन्येव न सशय ॥ १०४ ॥

किं सदेवाहमस्मीति किं वान्यत्प्रतिपद्यते ।  
सदेव चेदहशब्द सता मुख्यार्थ इष्यताम् ॥ १०५ ॥

अन्यच्चेत्सदहग्राहिप्रतिपत्तिर्मृषैव सा ।  
तस्मान्मुख्यग्रहे नास्ति वारणावगतेरिह ॥ १०६ ॥

प्रत्ययी प्रत्ययश्चैव यदाभासौ तदर्थता ।  
तयोरचितिमत्त्वाच्च चैतन्ये कल्प्यते फलम् ॥ १०७ ॥

कूटस्थेऽपि फल योग्य राजनीव जयादिकम् ।  
तदनात्मत्वहेतुभ्या क्रियाया प्रत्ययस्य च ॥ १०८ ॥

आदर्शस्तु यदाभासो मुखाकार स एव स ।  
यथैव प्रत्ययादर्शो यदाभासस्तदा ह्यहम् ॥ १०९ ॥

इत्येव प्रतिपत्ति स्यात्सदस्मीति च नान्यथा ।  
तत्त्वमित्युपदेशोऽपि द्वाराभावादनर्थक ॥ ११० ॥

श्रोतु स्यादुपदेशश्चेदर्थवत्त्व तदा भवेत् ।  
अध्यक्षस्य न चेदिष्ट श्रोतृत्व कस्य तद्भवेत् ॥ १११ ॥

अध्यक्षस्य समीपे स्याद्बुद्धेरेवेति चेन्मतम् ।  
न तत्कृतोपकारोऽस्ति काष्ठाद्यद्वन्न कल्प्यते ॥ ११२ ॥

बुद्धौ चेत्तत्कृत कश्चिन्नन्वेव परिणामिता ।  
आभासेऽपि च को दोष सति श्रुत्याद्यनुग्रहे ॥ ११३ ॥

आभासे परिणामश्चेन्न रज्ज्वादिनिभत्ववत् ।  
सर्पादेश्च तथावोचमादर्शो च मुखत्ववत् ॥ ११४ ॥

नात्माभासत्वसिद्धिश्चेदात्मनो ग्रहणात्पृथक् ।  
मुखादेश्च पृथक्सिद्धिरिह त्वन्योन्यसश्रय ॥ ११५ ॥

अध्यक्षस्य पृथक्सिद्धावाभासस्य तदीयता ।  
आभासस्य तदीयत्वे ह्यध्यक्षव्यतिरिक्तता ॥ ११६ ॥

नैव स्वप्ने पृथक्सिद्धे प्रत्ययस्य दृशेस्तथा ।  
रथादेस्तत्र शून्यत्वात्प्रत्ययस्यात्मना ग्रह ॥ ११७ ॥

अवगत्या हि सव्याप्त प्रत्ययो विषयाकृति ।  
जायते स यदाकार स बाह्यो विषयो मत ॥ ११८ ॥

कर्मेप्सिततमत्वात्स तद्वान्कार्ये नियुज्यते ।  
आकारो यत्र चाप्येत करण तदिहोच्यते ॥ ११९ ॥

यदाभासेन सव्याप्त सङ्गातेति निगद्यते ।  
त्रयमेतद्विविच्यात्र यो जानाति स आत्मवित् ॥

सम्यक्सशयमिध्योक्ता प्रत्यया व्यभिचारिण ।  
एकैवावगतिस्तेषु भेदस्तु प्रत्ययार्पित ॥ १२१ ॥

आधिभेदाद्यथा भेदो मणेरवगतेस्तथा ।  
अशुद्धि परिणामश्च सर्व प्रत्ययसश्रयात् ॥ १२२ ॥

प्रथम ग्रहण सिद्धि प्रत्ययानामिहान्यत ।  
आपरोक्ष्यात्तदेवोक्तमनुमान प्रदीपवत् ॥ १२३ ॥

किमन्यद्ग्राहयेत्कश्चित्प्रमाणेन तु केनचित् ।  
विनैव तु प्रमाणेन निवृत्त्यान्यस्य शेषत ॥ १२४ ॥

शब्देनैव प्रमाणेन निवृत्तिश्चेदिहोच्यते ।  
अध्यक्षस्याप्रसिद्धत्वाच्छून्यतैव प्रसज्यते ॥ १२५ ॥

चेतनस्त्व कथं देह इति चेन्नाप्रसिद्धित् ।  
चेतनस्यान्यत सिद्धावेव स्यादन्यहानत ॥ १२६ ॥

अध्यक्ष स्वयमस्त्येव चेतनस्यापरोक्षत ।  
तुल्य एव प्रबोध स्यादन्यस्यासत्त्ववादिना ॥

अहमज्ञासिष चेदमिति लोकस्मृतेरिह ।  
करण कर्म कर्ता च सिद्धास्त्वेकक्षणे किल ॥ १२८ ॥

प्रामाण्येऽपि स्मृते शैब्रथाद्यौगपद्य विभाव्यते ।  
क्रमेण ग्रहण पूर्व स्मृते पश्चात्तथैव च ॥ १२९ ॥

अज्ञासिषमिदं मा चेत्यपेक्षा जायते ध्रुवम् ।  
विशेषोऽपेक्ष्यते यत्र तत्र नैवैककालता ॥ १३० ॥

आत्मनो ग्रहणे चापि त्रयाणामिह सभवात् ।  
आत्मन्यासक्तकर्तृत्व न स्यात्करणकर्मणो ॥ १३१ ॥

व्याप्तुमिष्टं च यत्कर्तुं क्रियया कर्म तत्स्मृतम् ।  
अतो हि कर्तृतन्त्रत्व तस्येष्टं नान्यतन्त्रता ॥ १३२ ॥

शब्दाद्भानुमितेर्वापि प्रमाणाद्वा ततोऽन्यत ।  
सिद्धिं सर्वपदार्थानां स्यादज्ञं प्रति नान्यथा ॥ १३३ ॥

अध्यक्षस्यापि सिद्धिं स्यात्प्रमाणेन विनैव वा ।  
विना स्वस्य प्रसिद्धिस्तु नाज्ञं प्रत्युपयुज्यते ॥ १३४ ॥

तस्यैवाज्ञत्वमिष्टं चेज्ज्ञानत्वेऽन्या मतिर्मवेत् ।  
अन्यस्यैवाज्ञताया च तद्विज्ञाने ध्रुवा भवेत् ॥ १३५ ॥

ज्ञातता स्वात्मलाभो वा सिद्धिं स्यादन्यदेव वा ।  
ज्ञातत्वेऽनन्तरोक्तौ त्वं पक्षौ सस्मर्तुमर्हसि ॥ १३६ ॥

सिद्धिं स्यात्स्वात्मलाभश्चेद्यत्नस्तत्र निरर्थक ।  
सर्वलोकप्रसिद्धत्वात्स्वहेतुभ्यस्तु वस्तुन ॥ १३७ ॥

ज्ञानज्ञेयादिवादेऽतः सिद्धिर्ज्ञातत्वमुच्यते ।  
अध्यक्षाध्यक्ष्ययोः सिद्धिर्ज्ञेयत्वनात्मलाभता ॥

स्पष्टत्वं कर्मकर्त्रादेः सिद्धिता यदि कल्प्यते ।  
स्पष्टतास्पष्टते स्थातामन्यस्यैव न चात्मन ॥ १३९ ॥



अद्रष्टुर्नैव चान्धस्य स्पष्टीभावो घटस्य तु ।  
कर्त्रादे स्पष्टतेष्टा चेद्द्रष्टृताध्यक्षकर्तृका ॥ १४० ॥

अनुभूते किमन्यस्मिन्स्यात्तवापेक्षया वद ।  
अनूभवितरीष्टा स्यात्सोऽप्यनूभूतिरेव न ॥ १४१ ॥

अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनै ।  
ग्राह्यग्राहकसवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥ १४२ ॥

भूतिर्येषा क्रिया सैव कारक सैव चोच्यते ।  
सत्त्व नाशित्वमस्याश्चेत्सकर्तृत्व तथेप्यताम् ॥

न कश्चिच्चेप्यते धर्म इति चेत्पक्षहानता ।  
नन्वस्तित्वादयो धर्मा नास्तित्वादिनिवृत्तय ॥

न भूतेस्तर्हि नाशित्व स्वालक्षण्य मत हि ते ।  
स्वलक्षणावधिर्नाशो नाशोऽनाशनिवृत्तिता ॥ १४५ ॥

अगोरसत्त्व गोत्व ते न तु तद्गोत्वलक्षणम् ।  
क्षणवाच्योऽपि योऽर्थ स्यात्सोऽप्यन्याभाव एव ते ॥

भेदाभावेऽप्यभावख भेदो नामभिरिष्यते ।  
नामभेदैरनेकत्वमेकस्य स्यात्कथ तव ॥ १४७ ॥

अपोहो यदि भिन्नाना वृत्तिस्तस्य कथं गवि ।  
 नाभावा भेदका सर्वे विशेषा वा कथञ्चन ।  
 नामजात्यादयो यद्वत्सविदस्तेऽविशेषत ॥ १४८ ॥

प्रत्यक्षमनुमानं वा व्यवहारे यदिच्छसि ।  
 क्रियाकारकभेदैस्तदभ्युपेयं ध्रुवं भवेत् ॥ १४९ ॥

तस्मान्नीलं तथा पीतं घटादिर्वा विशेषणम् ।  
 सविदस्तदुपेयं स्याद्येन चाप्यनुभूयते ॥ १५० ॥

रूपादीनां यथान्यं स्याद्भाह्यत्वाद्भाहकस्तथा ।  
 प्रत्ययस्य यथान्यं स्याद्भ्रञ्जकत्वात्प्रदीपवत् ॥

अध्यक्षस्य दृशे क्रीदकसंबन्धं सभविष्यति ।  
 अध्यक्ष्येण तु दृश्येन मुक्त्वान्यो द्रष्टृदृश्यताम् ॥

अध्यक्षेण कृता दृष्टिर्दृश्यं व्याप्नोत्यथापि वा ।  
 नित्याध्यक्षकृतं कश्चिदुपकारो भवेद्धियाम् ॥ १५३ ॥

स चोक्तस्तन्निमित्तत्वं प्राक्सव्याप्तिश्च घटादिषु ।  
 यथा लोकादिसव्याप्तिर्व्यञ्जकत्वाद्धियस्तथा ॥

आलोकस्थो घटो यद्वद्भ्रुव्यारूढो भवेत्तथा ।  
 धीव्याप्तिं स्याद्द्वारोहो धियो व्याप्तौ क्रमो भवेत् ॥

पूर्वं स्यात्प्रत्ययव्याप्तिस्ततोऽनुग्रह आत्मन ।  
कृत्स्नाध्यक्षस्य नो युक्त कालाकाशादिवत्क्रम ॥

विषयग्रहण यस्य कारणापेक्षया भवेत् ।  
सत्येव ग्राह्यशेषे च परिणामी स चित्तवत् ॥ १५७ ॥

अध्यक्षोऽहमिति ज्ञान बुद्धेरेव विनिश्चय ।  
नाध्यक्षस्याविशेषत्वाच्च तस्यास्ति परो यत ॥

कर्त्रा चेदहमित्येवमनुभूयेत मुक्तता ।  
सुखदुःखविनिर्माणो नाहकर्तरि युज्यते ॥ १५९ ॥

देहादावभिमानोत्थो दुःखीति प्रत्ययो भ्रुवम् ।  
कुण्डलीप्रत्ययो यद्वत्प्रत्यगात्माभिमानिना ॥ १६० ॥

बाध्यते प्रत्ययेनेह विवेकेनाविवेकवान् ।  
विपर्यासेऽसदन्त स्यात्प्रमाणस्याप्रमाणत ॥

दाहच्छेदविनाशेषु दुःखित्वं नान्यथात्मन ।  
नव ह्यन्यस्य दाहादावन्यो दुःखी भवेत्त्वचित् ॥

अस्पर्शत्वाददेहत्वान्नाह दाहो यत सदा ।  
तस्मान्मिथ्याभिमानोत्थं मृते पुत्रे मृतिर्यथा ॥ १६३ ॥

कुण्डल्यहमिति ह्येतद्वाध्येतैव विवेकिना ।  
 दु खोति प्रत्ययस्तद्वत्केवलाहधिया सह ॥ १६४ ॥  
 सिद्धे तु खित्व इष्ट स्यात्तच्छक्तिश्छन्दसात्मन ।  
 मिथ्याभिमानतो दु खी तेनार्थापादनक्षम ॥  
 अस्पर्शोऽपि यथा स्पर्शमचलश्चलनादि च ।  
 अविवेकात्तथा दु ख मानस चात्मनीक्षते ॥ १६६ ॥  
 विवेकात्मधिया दु ख नुद्यते चलनादिवत् ।  
 अविवेकस्वभावेन मनो गच्छत्यनिच्छत ॥  
 तदा नु दृश्यते दु ख नैश्चल्ये नैव तस्य तत् ।  
 प्रत्यगात्मनि तस्मात्तद्दु ख नैवोपपद्यते ॥ १६८ ॥  
 त्वसतोस्तुल्यनीडत्वाग्नीलाश्वविद भवेत् ।  
 निर्दु खवाचिना योगात्त्वशब्दस्य तदर्थता ॥  
 प्रत्यगात्माभिधानेन तच्छब्दस्य युतेस्तथा ।  
 दशमस्त्वमसीत्येव वाक्य म्यात्प्रत्यगात्मनि ॥ १७० ॥  
 स्वार्थस्य ह्यप्रहाणेन विशिष्टार्थसमर्पकौ ।  
 प्रत्यगात्मावगत्यन्तौ नान्योऽर्थोऽर्थाद्विरोध्यत ॥

नवबुद्ध्यपहाराद्धि स्वात्मान दशपूरणम् ।

अपश्यञ्ज्ञातुमेवेच्छेत्स्वमात्मान जनस्तथा ॥ १७२ ॥

अविद्याबद्धचक्षुष्ट्वात्कामापहृतधी सदा ।

विविक्त दृशिमात्मान नेक्षते दशम यथा ॥ १७३ ॥

दशमस्त्वमसीत्येव तत्त्वमस्यादिवाक्यत ।

स्वमात्मान विजानाति कृत्स्नान्त करणेक्षणम् ॥

इद पूर्वेमिद पश्चात्पद वाक्य भवेदिति ।

नियमो नैव वेदेऽस्ति पदसागत्यमर्थत ॥ १७५ ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्या ततो वाक्यार्थबोधनम् ।

वाक्ये हि श्रूयमाणाना पदानामर्थसस्मृति ॥

यदा नित्येषु वाक्येषु पदार्थस्तु विविच्यते ।

वाक्यार्थज्ञानसक्रान्त्यै तदा प्रश्नो न युज्यते ॥

अन्वयव्यतिरेकोक्ति पदार्थस्मरणाय तु ।

स्मृत्यभावे न वाक्यार्थो ज्ञातु शक्यो हि केनचित् ॥

तत्त्वमस्यादिवाक्येषु त्वपदार्थाविवेकत ।

व्यज्यते नैव वाक्यार्थो नित्यमुक्तोऽहमित्यत ॥ १७९ ॥

अन्वयव्यतिरेकोक्तिस्तद्विवेकाय नान्यथा ।  
त्वपदार्थविवेके हि पाणावर्षितबिल्ववत् ॥ १८० ॥

वाक्यार्थो व्यज्यते चैव केवलोऽहपदार्थत ।  
दु खीत्येतदपोहेन प्रत्यगात्मविनिश्चयात् ॥ १८१ ॥

तत्रैव सभवत्यर्थे श्रुतहानाश्रुतार्थधी ।  
नैव कल्पयितु युक्ता पदवाक्यार्थकोविदै ॥ १८२ ॥

प्रत्यक्षादीनि बाधेरन्कृष्णलादिषु पाकवत् ।  
अक्षजादिनिभैरेतै कथ स्याद्वाक्यबाधनम् ॥ १८३ ॥

दु रयस्मीति सति ज्ञाने निर्दु खीति न जायते ।  
प्रत्यक्षादिनिभत्वेऽपि वाक्यान्न व्यभिचारत ॥

स्वप्ने दु रयहमध्यास दाहच्छेदादिहेतुत ।  
तत्कालभाविभिर्वाक्यैर्न बाध क्रियते यदि ॥ १८५ ॥

समाप्तेस्तर्हि दु खस्य प्राक्क तद्बाध इष्यताम् ।  
न हि दु खस्य सतानो भ्रान्तेर्वा दृश्यते क्वचित् ॥

प्रत्यगात्मन आत्मत्व दु रयस्मीत्यस्य बाधया ।  
दशम नवमस्येव वेद चेदविरुद्धता ॥ १८७ ॥

नित्यमुक्तत्वविज्ञान वाक्याद्भवति नान्यत ।  
वाक्यार्थस्यापि विज्ञान पदार्थस्मृतिपूर्वकम् ॥ १८८ ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्या पदार्थ स्मर्यते ध्रुवम् ।  
एव निर्दु खमात्मानमक्रिय प्रतिपद्यते ॥ १८९ ॥

सदेवेत्यादिवाक्येभ्य प्रमा स्फुटतरा भवेत् ।  
दशमस्त्वमसीत्यस्माद्यथैव प्रत्यगात्मनि ॥ १९० ॥

प्रबोधेन यथा स्वाप्न सर्वदु ख निवर्तते ।  
प्रत्यगात्मधिया तद्बद् खित्व सर्वदात्मन ॥

कृष्णलादौ प्रमाजन्म तदन्यार्थामृदुत्वत ।  
तत्त्वमस्यादिवाक्येषु न त्वेवमविरोधत ॥ १९१ ॥

वाक्ये तत्त्वमसीत्यस्मिञ्ज्ञातार्थं तदसिद्धयम् ।  
त्वमर्थे सत्यसाहाय्याद्वाक्य नोत्पादयेत्प्रमाम् ॥

तत्त्वमोस्तुल्यनीडार्थमसीत्येतत्पद भवेत् ।  
तच्छब्द प्रत्यगात्मार्थस्तच्छब्दार्थस्त्वमस्तथा ॥

दु खित्वात्प्रत्यगात्मत्व वारयेतामुभावपि ।  
एव च नेति नेत्यर्थं गमयेता परस्परम् ॥ १९५ ॥

एव तत्त्वमसीत्यस्य गम्यमाने फले कथम् ।  
अप्रमाणत्वमस्योक्त्वा क्रियापेक्षत्वमुच्यते ॥ १९६ ॥

तस्मादाद्यन्तमध्येषु कुर्वित्येतद्विरोध्यत ।  
न कल्प्यमश्रुतत्वाच्च श्रुतत्यागोऽप्यनर्थक ॥

यथानुभूयते तृप्तिर्भुजेर्वाक्यान्न गम्यते ।  
वाक्यस्य विधृतिस्तद्ब्रह्मोशकृत्पायसीक्रिया ॥

सत्यमेवमनात्मार्थवाक्यात्पारोक्ष्यबोधनम् ।  
प्रत्यगात्मनि न त्वेव सत्याप्राप्तिवद्भ्रुवम् ॥

स्वयवेद्यत्वपर्याय स्वप्रमाणक इष्यताम् ।  
निवृत्ताविदम सिद्ध स्वात्मनोऽनुभवश्च न ॥ २०० ॥

बुद्धीना विषयो दु ख नो यस्य विषया मता ।  
कुतोऽस्य दु खसबन्धो दृशे स्यात्प्रत्यगात्मन ॥

दृशिरेवानुभूयेत स्वेनैवानुभवात्मना ।  
तदाभासतया जन्म धियोऽस्यानुभव स्मृत ॥ २०२ ॥

अशनायादिनिर्मुक्त सिद्धो मोक्षस्त्वमेव स ।  
श्रोतव्यादि तवेत्येतद्विरुद्ध कथमुच्यते ॥ २०३ ॥



सेत्स्वतीत्येव चेत्तत्स्याच्छ्रवणादि तदा भवेत् ।  
मोक्षस्यानित्यतैव स्याद्विरोधे नान्यथा वच ॥ २०४ ॥

श्रोतृश्रोतव्ययोर्भेदो यदीष्ट स्याद्भवेदिदम् ।  
इष्टार्थकोप एव स्यान्न युक्त सर्वथा वच ॥

सिद्धो मोक्षोऽहमित्येव ज्ञात्वात्मान भवेद्यदि ।  
चिकीर्षुर्य स मूढात्मा शास्त्र चोद्धाटयत्यपि ॥

न हि सिद्धस्य कर्तव्य सकार्यस्य न सिद्धता ।  
उभयालम्बन कुर्वन्नात्मान वञ्चयत्यपि ॥ २०७ ॥

सिद्धो मोक्षस्त्वमित्येतद्वस्तुमात्र प्रदर्शयते ।  
श्रोतुस्तथात्वविज्ञाने प्रवृत्ति स्यात्कथ त्विति ॥

कर्ता तु ख्यहमस्मीति प्रत्यक्षेणानुभूयते ।  
कर्ता तु खी च मा भूवमिति यत्नो भवेत्तत ॥ २०९ ॥

तद्विज्ञानाय युक्त्यादि कर्तव्य श्रुतिरब्रवीत् ।  
कर्तृत्वाद्यनुवादेन सिद्धत्वानुभवाय तु ॥ २१० ॥

निर्दु खो निष्क्रियोऽकाम सिद्धो मोक्षोऽहमित्यपि ।  
गृहीत्वैव विरुद्धार्थमादध्यात्कथमेव स ॥ २११ ॥

सकाम सक्रियोऽसिद्ध इति मेऽनुभव कथम् ।  
अतो मे विपरीतस्य तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २१२ ॥

इहैव घटते प्रश्नो न मुक्तत्वानुभूतये ।  
प्रमाणेन विरोधी य सोऽत्रार्थं प्रश्नमर्हति ॥ २१३ ॥

अह निर्मुक्त इत्येव सदसीत्यन्यमानज ।  
प्रत्यक्षाभासजन्यत्वाद्दु खित्व प्रश्नमर्हति ॥ २१४ ॥

पृष्टमाकाङ्क्षित वाच्यं दुःखाभावमभीप्सितम् ।  
कथं हीदं निवर्तेत दुःखं सर्वात्मना मम ॥ २१५ ॥

इति प्रश्नानुरूपं यद्वाच्यं दुःखनिवर्तकम् ।  
श्रुते स्वात्मनि नाशङ्का प्रामाण्ये सति विद्यते ॥

तस्मादात्मविमुक्तत्वं प्रत्याययति तद्वचः ।  
वक्तव्यं तत्तथार्थं स्याद्विरोधेऽसति केनचित् ॥

इतोऽन्योऽनुभवः कश्चिदात्मनो नोपपद्यते ।  
अविज्ञातविज्ञानताविज्ञातारमिति श्रुते ॥ २१८ ॥

त्वपदार्थविवेकाय सन्यासः सर्वकर्मणाम् ।  
साधनत्वं ब्रजत्येव शान्तो दान्तानुशासनात् ॥ २१९ ॥

त्वमर्थं प्रत्यगात्मानं पश्येदात्मानमात्मनि ।  
 वाक्यार्थं तत आत्मानं सर्वं पश्यति केवलम् ॥ २२० ॥

सर्वमात्मेति वाक्यार्थं विज्ञातेऽस्य प्रमाणतः ।  
 असत्त्वे ह्यन्यमानस्य विधिस्तं योजयेत्कथम् ॥

तस्माद्वाक्यार्थविज्ञानान्नोर्ध्वं कर्मविधिर्मवेत् ।  
 न हि ब्रह्मास्मि कर्तेति विरुद्धे भवतो धियौ ॥ २२२ ॥

ब्रह्मास्मीति च विद्येयं नैव कर्तेति बाध्यते ।  
 सकामो बद्ध इत्येव प्रमाणाभासजातया ॥ २२३ ॥

शास्त्राद्ब्रह्मास्मि नान्योऽहमिति बुद्धिर्भवेद्बुद्ध्या ।  
 यदा युक्ता तदैवधीर्यथा देहात्मधीरिति ॥ २२४ ॥

सभयादभयं प्राप्तस्तदर्थं यतते च यः ।  
 स पुनः सभयं गन्तुं स्वतन्त्रश्चेन्न हीच्छति ॥ २२५ ॥

यथेष्टाचरणप्राप्तिं सन्यासादिविधौ कुतः ।  
 पदार्थाज्ञानबुद्धस्य वाक्यार्थानुभवार्थिनः ।  
 अतः सर्वमिदं सिद्धं यत्प्रागस्माभिरीरितम् ॥ २२६ ॥

यो हि यस्माद्विरक्तः स्यान्नास्सौ तस्मै प्रवर्तते ।  
 लोकत्रयाद्विरक्तत्वान्मुमुक्षुः किमितीहते ॥ २२७ ॥

श्रुधया पीड्यमानोऽपि न विष ह्यत्तुमिच्छति ।  
मृष्टान्नाश्वस्ततृड् जानन्नामूढस्तज्जिघत्सति ॥ २२८ ॥

वेदान्तवाक्यपुष्पेभ्यो ज्ञानामृतमधूत्तमम् ।  
उज्जहारालिवद्यो नस्तस्मै सद्गुरवे नम ॥ २२९ ॥

### भेषजप्रयोगप्रकरणम् ॥

प्रयुज्य तृष्णाज्वरनाशकारण  
चिकित्सित ज्ञानविरागभेषजम् ।  
न याति कामज्वरसनिपातजा  
शरीरमालाशतयोगदु खिताम् ॥ १ ॥

अह ममेति त्वमनर्थमीहसे  
परार्थमिच्छन्ति तवान्य ईहितम् ।  
न तेऽर्थबोधो न हि मेऽस्ति चार्थिता  
ततश्च युक्त शम एव ते मन ॥ २ ॥

यतो न चान्य परमात्सनातना  
त्सदैव तृप्तोऽहमतो न मेऽर्थिता ।

सदैव तृप्तश्च न कामये हित  
यतस्व चेत प्रशमाय तेऽधिकम् ॥ ३ ॥

षड्भूमिमालाभ्यतिवृत्त एव य  
स एव चात्मा जगतश्च न श्रुते ।  
प्रमाणतश्चापि मया प्रवेद्यते  
मुधैव तस्माच्च मनस्तवेहितम् ॥ ४ ॥

त्वयि प्रशान्ते न हि चास्ति भेदधी  
र्यतो जगन्मोहमुपैति मायया ।  
ग्रहो हि मायाप्रभवस्य कारण  
ग्रहाद्विमोके न हि सास्ति कस्यचित् ॥ ५ ॥

न मेऽस्ति मोहस्तव चेष्टितेन हि  
प्रबुद्धतत्त्वस्त्वसितो ह्यविक्रिय ।  
न पूर्वतत्त्वोत्तरभेदता हि नो  
वृथैव तस्माच्च मनस्तवेहितम् ॥ ६ ॥

यतश्च नित्योऽहमतो न चान्यथा  
विकारयोगे हि भवेदनित्यता ।  
सदा प्रभातोऽहमतो हि चाद्वयो  
विकल्पित चाप्यसदित्यवस्थितम् ॥ ७ ॥

अभावरूप त्वमसीह हे मनो  
 निरीक्ष्यमाणे न हि युक्तितोऽस्तित्ता ।  
 सतो ह्यनाशादसतोऽप्यजन्मतो  
 द्वय च चेतस्तव नास्तितेष्यते ॥ ८ ॥

द्रष्टा च दृश्य च तथा च दर्शन  
 भ्रमस्तु सर्वस्तव कल्पितो हि स ।  
 दृशेश्च भिन्न न हि दृश्यमीक्ष्यते  
 स्वप्नप्रबोधेन तथा न भिद्यते ॥ ९ ॥

विकल्पना वापि तथाद्वया भवे-  
 दवस्तुयोगात्तदलातचक्रवत् ।  
 न शक्तिभेदोऽस्ति यतो न चात्मना  
 ततोऽद्वयत्व श्रुतितोऽवसीयते ॥ १० ॥

मिथश्च भिन्ना यदि ते हि चेतना  
 क्षयस्तु तेषा परिमाणयोगत ।  
 ध्रुवो भवेद्भेदवता हि दृष्टतो  
 जगत्क्षयश्चापि समस्तमोक्षत ॥ ११ ॥

न मेऽस्ति कश्चिन्न च सोऽस्मि कस्यचि-  
 द्यतोऽद्वयोऽह न हि चास्ति कल्पितम् ।

अकल्पितश्चास्मि पुरा प्रसिद्धितो  
विकल्पनाया द्वयमेव कल्पितम् ॥ १२ ॥

विकल्पना चाप्यभवे न विद्यते  
सदन्यदित्येवमतो न नास्तिना ।  
यतः प्रवृत्ता तव चापि कल्पना  
पुरा प्रसिद्धेर्न च तद्धि कल्पितम् ॥ १३ ॥

असद्वय तेऽपि हि यद्यदीक्ष्यते  
न दृष्टमित्येव न चैव नास्तिता ।  
यत प्रवृत्ता सदसद्विकल्पना  
विचारवद्वापि तथाद्वय च सत् ॥ १४ ॥

सदभ्युपेत भवतोपकल्पित  
विचारहेतोर्यदि तस्य नास्तिता ।  
विचारहानाच्च तथैव सस्थित  
न चेत्तदिष्ट नितरा सदिष्यते ॥ १५ ॥

असत्सम चैव सदित्यपीति चे  
दनर्थवत्त्वान्नरशृङ्गतुल्यत ।  
अनर्थवत्त्व त्वसति ह्यकारण  
न चैव तस्मान्न विपर्ययेऽन्यथा ॥ १६ ॥

असिद्धितश्चापि विचारकारणा

द्वयं च तस्मात्प्रसृतं च मायया ।

श्रुते स्मृतेश्चापि तथा हि युक्तित्

प्रसिध्यतीत्य न तु युज्यतेऽन्यथा ॥ १७ ॥

विकल्पनाश्चापि विधर्मकं श्रुते

पुरा प्रसिद्धेश्च विकल्पितोऽद्वयम् ।

न चेति नेतीति यथा विकल्पित

निषिध्यतेऽत्राप्यविशेषसिद्धये ॥ १८ ॥

अकल्पितेऽप्येवमजेऽद्वयेऽक्षरे

विकल्पयन्त सदसञ्च जन्मभिः ।

स्वचित्तमायाप्रभवं च ते भव

जरा च मृत्यु च नियान्ति सततम् ॥ १९ ॥

भवाभवत्वं तु न चेदवस्थिति-

र्न चास्य चान्यस्थितिजन्म नान्यथा ।

सतो ह्यसत्त्वादसत्तश्च सत्त्वतो

न च क्रियाकारकमित्यतोऽप्यजम् ॥ २० ॥

अकुर्वदिष्टं यदि वास्य कारक

न किञ्चिदन्यन्ननु नास्त्यकारकम् ।



सतोऽविशेषादसतश्च सञ्च्युतौ  
तुलान्तयोर्यद्वदनिश्चयान्न हि ॥ २१ ॥

न चेत्स इष्ट सदसद्विपर्यय  
कथं भव स्यात्सदसद्व्यवस्थितौ ।  
विभक्तमेतद्द्वयमप्यवस्थित  
न जन्म तस्माच्च मनो हि कस्यचित् ॥ २२ ॥

अथाभ्युपेत्यापि भव तवेच्छतो  
ब्रवीमि नार्थस्तव चेष्टितेन मे ।  
न हानवृद्धी न यत स्वतोऽसतो  
भवोऽन्यतो वा यदि वास्तिता तयो ॥ २३ ॥

ध्रुवा ह्यनित्याश्च न चान्ययोगिनो  
मिथश्च कार्यं न च तेषु युज्यते ।  
अतो न कस्यापि हि किञ्चिदिष्यते  
स्वयं च तत्त्वं न निरुक्तिगोचरम् ॥ २४ ॥

समं तु तस्मात्सततं विभातव  
द्वयाद्विमुक्तं सदसद्विकल्पितात् ।  
निरीक्ष्य युक्त्या श्रुतितस्तु बुद्धिमा  
नशेषनिर्वाणमुपैति दीपवत् ॥ २५ ॥

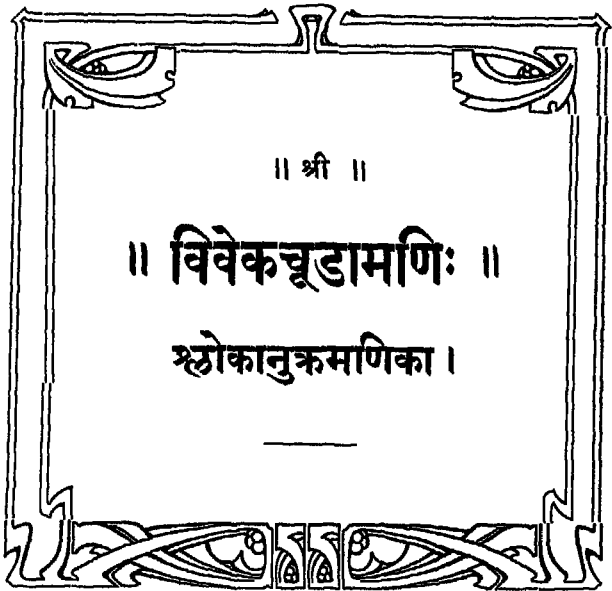
अवेद्यमेक यदनन्यवेदिना  
 कुतार्किकाणा च सुवेद्यमन्यथा ।  
 निरीक्ष्य चेत्थ त्वगुणग्रहोऽगुण  
 न याति मोह ग्रहदोषमुक्तित ॥ २६ ॥

अतोऽन्यथा न ग्रहनाश इष्यते  
 विमोहबुद्धेर्ग्रह एव कारणम् ।  
 ग्रहोऽप्यहेतुस्त्वनलस्त्वनिन्धनो  
 यथा प्रशान्तिं परमा तथा व्रजेत् ॥ २७ ॥

विमथ्य वेदोदधित समुद्धृत  
 सुरैर्महाब्धेस्तु यथा महात्मभि ।  
 तथामृत ज्ञानमिद हि यै पुरा  
 नमो गुरुभ्य परमीक्षित च यै ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगव  
 त्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीमच्छंकरभगवत कृतौ  
 उपदेशसहस्रथा पद्यप्रबन्ध समाप्त ॥





॥ श्री ॥

॥ विवेकचूडामणिः ॥

श्लोकानुक्रमणिका ।

---

1  
1

॥ श्री. ॥

## ॥ श्लोकानुक्रमणिका ॥

—\*—

|                        | पृष्ठम् |                       | पृष्ठम् |
|------------------------|---------|-----------------------|---------|
| अ                      |         | अत पर ब्रह्म सद०      | ४८      |
| अकर्ताहमभोक्ताहम्      | ९५      | अत पृथङ् नास्ति       | ४७      |
| अकृत्वा दृश्यविलय      | १३      | अत प्रमादान्न परो     | ६६      |
| अकृत्वा शत्रुसंहार     | १३      | अत प्राहुर्मनोऽविद्या | ३७      |
| अखण्डनित्याद्वय०       | २८      | अत समाधत्स्व यते      | ७४      |
| अखण्डबोधोधात्मनि       | १०२     | अतस्तौ मायया क्लृप्तौ | १०९     |
| अखण्डानन्दमात्मान      | ८४      | अतस्मिस्तद्बुद्धि     | २८      |
| अजरममरमस्ता०           | ८३      | अतीताननुसंधान         | ८७      |
| अजो नित्य इति ब्रूते   | ९०      | अतीव सूक्ष्म परमा०    | ७३      |
| अज्ञानमालस्यजडत्वं     | २३      | अतो नाय परात्मा       | ४५      |
| अज्ञानमूलोऽयमनात्म     | ३०      | अतोऽभिमान त्यज        | ६०      |
| अज्ञानयोगात्परमात्मन   | १०      | अतो विचार             | '       |
| अज्ञानसर्पदष्टस्य      | १३      | अतो विमुक्त्यै        | ४       |
| अज्ञानहृदयग्रन्थेर्नि० | ७१      | अतोऽस्य जीवभावोऽपि    | ४०      |
| अज्ञानहृदयग्रन्थेर्वि० | ८५      | अत्य तकामुक्तस्यापि   | ८८      |

|                         | पृष्ठम् |                       | पृष्ठम् |
|-------------------------|---------|-----------------------|---------|
| अत्यन्तवैराग्यवत्       | ७६      | अन्त श्रितानन्तदुरन्त | ५६      |
| अत्नात्मत्व दृढीकुर्वन् | ७७      | अन्त स्वय चापि        | ७९      |
| अत्रानात्मन्यहमिति      | २७      | अन्तर्बहि स्त्र स्थिर | ६८      |
| अत्रात्मबुद्धिं त्यज    | ३२      | अन्तस्त्यागो बहि०     | ७५      |
| अत्नाभिमानादह०          | १८      | अन्धत्वमन्दत्र        | २०      |
| अत्रैव सत्त्वात्मनि     | २६      | अन्नदानविसर्गाभ्या०   | ७७      |
| अथ ते सप्रबक्ष्यामि     | २७      | अपि कुर्वन्नकुर्वाण   | १०५     |
| अथात आदेश इति           | ७०      | अभावना वा विप०        | २३      |
| अधिकारिणमाशास्ते        | ७       | अमृतत्वस्य नाशास्ति   | ४       |
| अध्यस्तस्य कुत सत्त्व   | ९१      | अय स्वभाव             | ९       |
| अध्यासदोषात्पुरु०       | ३७      | अयमात्मा नित्य        | १०३     |
| अनयत्प्रमधिष्ठानात्     | ८२      | अयोऽभियोगादिव         | ७०      |
| अनात्मचित्तन त्यक्त्रा  | ७७      | अर्थस्य निश्चयो       | ५       |
| अनात्मवासनाजालै०        | ५६      | अभिज्ञाते परे तत्त्वे | १२      |
| अनादिकालोऽयमह           | ३८      | अविद्याकामकर्मादि     | १२      |
| अनादित्वमविद्याया       | ४१      | अविनाशी वा अरे        | १०७     |
| अनादेरपि विध्वंस        | ४१      | अव्यक्तनाम्नी परमेश   | २१      |
| अनिरूप्यस्वरूप यत्      | ९२      | अव्यक्तमेतन्निगुणै०   | २४      |
| अनुक्षण यत्परिहृत्य     | १६      | अव्यक्तादिस्थूल       | ९९      |
| अनुव्रजञ्चित्प्रतिबिम्ब | ३८      | अशरीर सदा सन्त        | १०५     |
| अन्त करणमतेषु           | २०      | असङ्गचिद्रूपममु       | ३६      |

|                         | पृष्ठम् |                       | पृष्ठम् |
|-------------------------|---------|-----------------------|---------|
| असङ्गोऽहमनङ्गोऽहम्      | ९५      | अहमोऽत्यन्तनिवृत्त्या | ६१      |
| असत्कल्पो विकल्पो       | ८१      | अहिनिर्व्वयनीवाय      | १०६     |
| असत्पदार्थानुभवे        | १०१     | अहेयमनुपादेय          | ४८      |
| असन्नित्वौ तु           | ४२      | अहेयमनुपादेय          | ९१      |
| असौ स्वसाक्षिको         | ४४      | आ                     |         |
| अस्तभेदमनपास्त          | ५३      | आकाशवत्कल्पविदू०      | ९७      |
| अस्ति कश्चित्स्वय       | २५      | आकाशवन्निर्मल         | ८०      |
| अस्तीति प्रत्ययो यश्च   | १०९     | आत्मानात्मविवेक       | ३१      |
| अस्त्युपायो महान्       | १०      | आत्मार्थत्वेन हि      | २१      |
| अस्थूलमित्येतदस०        | ७१      | आदौ नित्यानित्य       | ९       |
| अहकर्तार्यस्मिन्नहमिति  | ६१      | आनन्दप्रतिबिम्ब       | ४२      |
| अहकार स विशेय           | २१      | आनन्दमयकोणस्य         | ४२      |
| अहकारग्रहान्मुक्त       | ६०      | आपातवैराग्यवतो        | १९      |
| अहकारादिदेहान्तान्      | ७       | आप्तोक्तिं खनन        | १३      |
| अहकारादिदेहान्ता        | २६      | आरूढशक्तेरहमा         | ९९      |
| अहपदार्थस्त्वहमा        | ५९      | आरोपित नाश्रयदूषक     | ९७      |
| अहबुद्धयैव मोहिण्या     | ६९      | आवरणस्य निवृ०         | ७०      |
| अह ब्रह्मेति विज्ञानात् | ८८      | आवृत्ते सदसत्त्वाभ्या | १०९     |
| अहभावस्य देहे           | ५८      | आशा छिन्द्य विषो०     | ७९      |
| अह ममेति प्रथित         | १७      | इ                     |         |
| अह ममेति यो भावो        | ५५      | इत को न्वस्ति         | ४       |

|                          | पृष्ठम् |                         | पृष्ठम् |
|--------------------------|---------|-------------------------|---------|
| इति गुरुवचनाच्छु०        | ९३      | ए                       |         |
| इति नतमवलोक्य            | १०१     | एकमेव सदानेक            | ८३      |
| इति श्रुता गुरोर्गाक्य   | ११०     | एकात्मके परे तत्त्वे    | ८१      |
| इत्थ विपश्चित्सद०        | ७१      | एकान्तस्थितिरिन्द्रियो० | ७५      |
| इत्याचार्यस्य शिष्यस्य   | ११०     | एतन्नितय दृष्ट          | ७०      |
| इद गरीर शृणु सूक्ष्म०    | १९      | एतमच्छिन्नया व्रत्या    | ७७      |
| इष्टानिष्टार्थसंप्राप्तौ | ८७      | एतयोर्म दता यत्र        | ७       |
| ई                        |         | एताभ्यामेव शक्तिभ्या    | २०      |
| ईश्वरो वस्तुतत्त्वज्ञो   | ४७      | एतावुपाधी परजीवयो०      | ४९      |
| उ                        |         | एव त्रिदेहकैवल्य        | १०८     |
| उक्तमर्थमिममात्मनि       | १४      | एष स्वय ज्योतिर०        | १०३     |
| उच्छ्वासनि श्वास         | २०      | एष स्वयज्योतिरज्ञो०     | ७७      |
| उद्धरेदात्मना            | ४       | एषाव्रतिर्नाम           | २२      |
| उपसीदेद्गुरु प्राज्ञ     | ७       | एषोऽन्तरात्मा पुरुष     | २६      |
| उपाधितादात्म्य           | ८९      | ऐ                       |         |
| उपाधिमेदात्स्वय०         | ७२      | ऐक्य तयोर्लक्षितयोर्न   | ४९      |
| उपाधिरायाति स एव         | ९७      | क                       |         |
| उपाधिसबन्धवशात्          | ३९      | कचित्काल समाधाय         | ९४      |
| उभयेषामिन्द्रियाणां      | ६       | क पण्डित सन्सद०         | ६८      |
| ऋ                        |         | कथ तरेय भव०             | ९       |
| ऋणमोचनकर्तार             | ११      | कबलितदिननाये            | २९      |



|                         | पृष्ठम् |                           | पृष्ठम् |
|-------------------------|---------|---------------------------|---------|
| कर्तापि वा कारयिता      | ९८      | क्षीर क्षीरे यथा क्षिप्त  | १०८     |
| कर्तृत्वभोक्तृत्वपरत्वं | ९९      | क्षुधा देहव्यथा त्यक्त्वा | १०४     |
| कर्मणा निर्मितो देह     | १०      | ग                         |         |
| कमन्द्रियै पञ्चभिः      | ३३      | गच्छस्तिष्ठन्नपवि०        | १००     |
| रूपाण्यव इवात्यन्त      | ८१      | गुणदोषविशिष्टेऽस्मिन्     | ८७      |
| कस्ता परानन्द           | १०१     | गुरुरेष सदानन्द           | ११०     |
| काम क्रोधो लोभ          | २२      | घ                         |         |
| कामाग्नी कामरूपी        | १०४     | घट जल तद्रतमर्क           | ४४      |
| कार्यप्रवर्धनाद्बीज     | ६३      | घटकलशकुसूल                | ७८      |
| किं हेय किमुपादेय       | ९४      | घटाकाश महाकाग             | ५८      |
| किमपि सततबोध            | ८२      | घटे नष्टे यथा व्योम       | १०८     |
| कुल्यायामथ नद्या        | १०७     | घटोदके बिम्बितमर्क        | ४४      |
| कृपया श्रूयता           | ११      | घटोऽयमिति विशातु          | १०३     |
| केनापि मृन्द्रिन्नतया   | ४६      | च                         |         |
| को नाम बन्ध             | ११      | चलत्युपाधौ प्रतिबिम्ब०    | ९९      |
| कोशैरन्नमयाद्यै         | ३०      | चित्तमूलो विकल्पो         | ८२      |
| क्रियानाशे भवेच्चिन्ता  | ६४      | चित्तस्य शुद्धये          | ५       |
| क्रियान्तरासक्तिम०      | ७३      | चिदात्मनि सदानन्दे        | ५८      |
| क्रियासर्माभहारेण       | ७९      | चित्ताशून्यमदैन्य०        | १०४     |
| क गत केन वानीत          | ९४      | छ                         |         |
| कचिन्मूढो विद्वान्      | १०५     | छायया स्पृष्टमुष्ण वा     | ९८      |

|                           | पृष्ठम् |                           | पृष्ठम् |
|---------------------------|---------|---------------------------|---------|
| छायाशरीरे प्रति०          | ३३      | ज्ञानोदयात्पुरारब्ध       | ८९      |
| छायेव पुस परि             | ८३      | त                         |         |
| ज                         |         | तच्छैवालापनये             | ३       |
| जतूना नरज म               | ३       | तटस्थिता बोधर्यान्त       | ९३      |
| जमवृद्धिपरिणत्य०          | ३       | तत श्रुतिस्तन्मनन         | १४      |
| जल पङ्कवदस्पष्ट           | ४१      | तत स्वरूपनिभ्रगो          | ६५      |
| जलादिसपर्कवगात्           | १५      | तत आत्मा सदानन्दो         | २१      |
| जले नापि स्थले नापि       | ९९      | ततस्तु तौ लक्षणया         | १०      |
| जहि मलमयकोशे              | ८०      | ततो त्रिकारा प्रकृते      | ७१      |
| जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु   | ४४      | ततोऽहमादेर्विनि०          | ६०      |
| जातिनीतिकुलगोत्र          | १०      | तत्त्व पदाभ्यामभि०        | ४९      |
| जीवतो यस्य कैवल्य         | ६६      | तत्त्वमस्यादित्रायोत्थ    | ५७      |
| जीवत्व न ततोऽयत्त         | ४१      | तत्साक्षिक भवेत्तत्तत्    | ४३      |
| जीवन्नेव सदा मुक्त        | १०५     | तथा वदन्त शरणा०           | ९       |
| ज्ञ                       |         | तदात्मानात्मनो सम्य०      | ४१      |
| ज्ञाता मनोहकृति           | ५५      | तद्वत्परे ब्रह्मणि        | ९८      |
| ज्ञातृज्ञेयज्ञानशून्य०    | ८८      | तद्बद्धेहादिब धेभ्यो      | १०८     |
| ज्ञाते वस्तुन्यपि बल०     | ८५      | तन्नितृत्त्या मुने सम्यक् | ७१      |
| ज्ञातना स्व प्रत्यगात्मान | ५१      | तन्मन शोधन कार्य          | ३७      |
| ज्ञानेनाज्ञानकार्यस्य     | ९१      | तमसा ग्रस्तवद्भानात्      | १०८     |
| ज्ञानेन्द्रियाणि च        | ३४      | तमस्तम कार्य              | ५४      |

|                       | पृष्ठम् |                         | पृष्ठम् |
|-----------------------|---------|-------------------------|---------|
| तमाराध्य गुरु         | ८       | दृष्टदु रेष्वनुद्वेगो   | ८       |
| तमो द्वाभ्या रज       | १७      | देवदत्तोऽहमित्ये०       | १०३     |
| तयोर्विरोधोऽयमुपाधि   | ४९      | दह धिय चिष्यतिबिम्ब     | ४४      |
| तरङ्गफेनभ्रमबुद्बुद   | ७९      | दहतद्धर्मतत्कर्म        | ३०      |
| तस्मात्सर्वप्रयत्नेन  | १३      | देहप्राणेन्द्रियमनो     | ७७      |
| तस्मादहकारमिम         | ६२      | देहस्थ मोक्षो नो        | १०७     |
| तस्मान्मन फारणमस्य    | ३६      | देहात्मधीरेव            | ३३      |
| ताभ्या प्रवधमाना सा   | ६३      | दहात्मना सस्थित०        | ६३      |
| तिरोभूते स्वात्म यमल० | २८      | देहादिनिष्ठाश्रम        | ३९      |
| तूष्णीमवस्था पर०      | १२      | दहादिब्रह्मपर्यन्ते     | ९       |
| तेजसीय तमो यन्न       | ८१      | दहादससक्तिमतो           | ६८      |
| त्यजाभिमान कुल०       | ६०      | दहादिसर्वविषये          | ३७      |
| त्वङ्मासमेदास्थि      | ३२      | देहेन्द्रियप्राणमनो     | २७      |
| त्वङ्मासरुधिरस्नायु   | १७      | देहेन्द्रियप्राण        | ७८      |
| त्वमहमिदमित्तीय       | ७२      | देहन्द्रियादावसति       | ३३      |
| द                     |         | देहेन्द्रियादौ कर्तव्ये | ८७      |
| दिग्गम्बरो वापि च     | १०४     | देहेन्द्रियेणहभाव       | ८७      |
| दुर्लभ त्रयमेवै०      | ३       | देहोऽयमन्नभवनो          | ३१      |
| दुर्वारससार           | ८       | देहोऽहमित्येव           | ३०      |
| दृश्य प्रतीत प्रवि०   | ९४      | दोषेण तीव्रो विषय       | ११      |
| दृश्यस्याग्रहण        | ६९      | द्रष्टु श्रोतुर्वक्तु   | ९       |

|                          | पृष्ठम् |                        | पृष्ठम् |
|--------------------------|---------|------------------------|---------|
| द्रष्टृदर्शनदृश्यादि     | ८१      | न योगेन न सारथेन       | १०      |
| ध                        |         | न साक्षिण साक्ष्य०     | ९८      |
| ध-योऽसि कृत०             | ११      | न हि प्रबुद्ध प्रतिभास | ९०      |
| ध-योऽह कृतकृत्योऽह       | ९१      | न ह्यस्ति विश्व        | ८०      |
| धीमात्रकोपाधि            | २०      | न ह्यस्त्यविद्या       | ३४      |
| न                        |         | नारायणोऽह नरकान्त०     | ९६      |
| न किञ्चिदत्र पश्यामि     | ९४      | नास्ति निर्वासनान्मौ०  | १०२     |
| न खिद्यते नो विषयै       | १०३     | नास्त्रैर्न शस्त्रैर०  | ३०      |
| न गच्छति विना            | १३      | नाह जीव पर ब्रह्मे०    | १७      |
| न जायते नो म्रियते       | २७      | नाहमिद नाहमदो          | ९५      |
| न तस्य मिथ्यार्थ         | ९०      | निगद्यतेऽन्त करण       | १८      |
| न तु देहादिसत्यत्व       | ९१      | निगृह्य शत्रोरहमो      | ६३      |
| न देशकालासन              | १०२     | नित्य त्रिभु सर्वगत    | ४५      |
| न नभो घटयोगेन            | ८९      | नित्याद्वयारण्डचि०     | ७१      |
| न त्रिरोधो न चोत्पत्ति   | १०९     | निदिध्यासनशीलस्य       | ८८      |
| न प्रत्यग्रब्रह्मणोर्भेद | ८७      | निद्राकल्पितदेश        | ५१      |
| न प्रमादादनर्थोऽयो       | ६५      | निद्राया लोकनार्ताया   | ५८      |
| नमस्तस्मै सदेकस्मै       | १०१     | नियमितमनसामु           | २७      |
| न मे देहेन सबधो          | ९७      | निरन्तराभ्यासवशात्     | ७३      |
| न मे प्रवृत्तिर्न च मे   | ९७      | निरस्तमायाकृत          | ४८      |
| नमो नमस्ते गुरवे         | ९५      | निरस्तरागा निरपास्त    | ९२      |

|                         | पृष्ठम् |                         | पृष्ठम् |
|-------------------------|---------|-------------------------|---------|
| निरुपममनादितत्त्व       | ९६      | पाणिपादादिमान्          | ३२      |
| निर्युण निष्कल सूक्ष्म  | ९१      | पाषाणवृक्षतुण           | १०८     |
| निर्धनोऽपि सदा          | १०५     | पुण्यानि पापानि         | ९८      |
| निर्विकल्पकमनल्प        | ५३      | पूर्वं जनेरपि मृते      | ३१      |
| निर्विकल्पकसमाधिना      | ७४      | प्रकृतिविकृतिभिन्न      | २७      |
| निष्क्रियोऽस्म्यविका०   | १००     | प्रकृतिविकृतिशून्य      | ८२      |
| नेद नेद कल्पितत्वाच्च   | ५०      | प्रज्ञानघन इत्यात्म     | १०७     |
| नैवात्मापि प्राण०       | ३४      | प्रज्ञावानपि पण्डितोऽपि | २३      |
| नैवायमानन्दमय           | ४२      | प्रतीतिर्जीवजगतो        | ५८      |
| नैवेन्द्रियाणि विषयेषु  | १०६     | प्रत्यगेकरस पूर्णम्     | ९१      |
| प                       |         | प्रबोधे म्वप्रवत्सर्व   | ४१      |
| पञ्चानामपि कोशाना       | ४३      | प्रमादो ब्रह्मनिष्ठाया  | ६५      |
| पञ्चानामपि कोशानाम्     | ३१      | प्राचीनवासनावेगात्      | ८८      |
| पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्य   | १७      | प्राणापानव्यानोदान      | १९      |
| पञ्चेन्द्रियै पञ्चभिरेव | ३४      | प्रारब्ध पुष्यति वपु    | ५७      |
| पठन्तु शास्त्राणि       | ४       | प्रारब्ध बलवत्तर        | ८९      |
| पत्रस्य पुष्पस्य        | १०७     | प्रारब्ध सिध्यति तदा    | ९०      |
| पृथग्मौषधसेवा           | १२      | प्रारब्धकर्मपरिकल्पि०   | १०६     |
| परस्परशैर्मिलितानि      | १५      | प्रारब्धसूत्रत्रयित     | ८४      |
| परावरैकत्वविवेक         | ७०      | ब                       |         |
| परिपूर्णमनाद्यन्तम्     | ९१      | बन्धश्च मोक्षश्च        | १०९     |

|                          | पृष्ठम् | भ                         | पृष्ठम् |
|--------------------------|---------|---------------------------|---------|
| बन्धो मोक्षश्च तृप्तिश्च | ९२      |                           |         |
| बहिस्तु विषयै सङ्ग०      | ७६      | भवानपीद परतत्त्वमा        | ९२      |
| बाह्यानुसन्धि परि०       | ६७      | भानुप्रभासजनिताभ्र        | २९      |
| बाह्ये निरुद्धे मनस      | २७      | मुञ्जे त्रिचित्रास्वपि    | ३८      |
| बाह्येन्द्रियै स्थूल     | १७      | भ्रमेणाग्ययथा वास्तु      | ४०      |
| बीज ससृतिभूमिजस्य        | २९      | भ्रान्तस्य यन्त्रन्द्रूमत | ४८      |
| बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियै   | ३८      | भ्रान्तिं विना त्वसङ्गस्य | ४०      |
| बुद्धिर्विनष्टा गलिता    | ९४      | भ्रान्तिकल्पितजगत्        | ५२      |
| बुद्धीन्द्रियाणि श्रवण   | १८      |                           | म       |
| बुद्धौ गुहाया सदस०       | ११      | मज्जास्थिमेद पल           | १४      |
| ब्रह्मण्युपरत शान्तो     | ८       | मन प्रसूते विषयान०        | ३६      |
| ब्रह्मप्रत्ययसतति        | १०१     | मनो नाम महाव्याघ्रो       | ३६      |
| ब्रह्मभूतस्तु ससृत्यै    | ४१      | मनोमयो नापि भवेत्         | ३७      |
| ब्रह्माकारतया            | ८२      | मन्दमध्यमरूपापि           | ७       |
| ब्रह्मात्मनो शोधितयो     | ८६      | मय्यरण्डसुरताम्भोधौ       | ०६      |
| ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्ता  | ७८      | मस्तकयस्तभारादे           | ११      |
| ब्रह्मानन्दनिधिमहा०      | ६१      | महामोहग्राह               | २८      |
| ब्रह्मानन्दरसानु०        | ९       | महास्वप्ने मायाकृत        | १००     |
| ब्रह्मानन्दरसास्वाद      | ८७      | मातापित्रोर्मलोद्भूत      | ७८      |
| ब्रह्माभिन्नत्वविज्ञान   | ४१      | मा भैष्ट विद्वन्          | १०      |
| ब्रह्मैवेद विश्वमित्येव  | ४७      | मायाक्लृप्तौ बन्धमोक्षौ   | १०८     |

|                        | पृष्ठम् |                        | पृष्ठम् |
|------------------------|---------|------------------------|---------|
| मायामात्रमिद द्वैत     | ८२      | यत्पर सकलवागगोचर       | ५२      |
| माया मायाकार्य         | २१      | यत्र कापि विशीर्ण      | १०७     |
| मिथ्यात्वेन निषिद्धेषु | ४३      | यत्र प्रविष्टा विषया   | ८८      |
| मिश्रस्य सत्त्वस्य     | २४      | यत्र भ्रान्त्या कल्पित | ७८      |
| नुज्जादिषीकामित्र      | ३१      | यत्रैष जगदाभासो        | ५८      |
| मृत्कार्य सकल घटादि    | ५१      | यत्सत्यभूत निजरूप      | ५९      |
| मृत्कार्यभूतोऽपि मृदो  | ४६      | यथा प्रकृष्ट शैवाल     | ६५      |
| मेधावी पुरुषो          | ५       | यथा यथा प्रत्यगव ०     | ५६      |
| मोक्षकारणसामग्र्या     | ७       | यथा सुवर्णं पुटपाक     | ७३      |
| मोक्षस्य काङ्क्षा यदि  | १६      | यदा कदा वापि विप ०     | ६६      |
| मोक्षस्य हेतु प्रथमो   | १४      | यदिद सकल विश्व         | ४६      |
| मोक्षैकसक्त्या विषयेषु | ३७      | यदि सत्य भवेद्विश्व    | ४७      |
| मोह जहि महामृत्यु      | १७      | यद्बोद्धव्य तवेदानीं   | १४      |
| मोह एव महामृत्यु       | १७      | यद्युत्तरोत्तराभाव     | ८९      |
| य                      |         | यद्विभाति सद्नेकधा     | ५४      |
| य पश्यति स्वय          | २५      | यस्त्वयाद्य कृत        | १४      |
| न एषु मूढा विषयेषु     | १५      | यस्मिन्नस्ताशेष        | १००     |
| यच्चकास्त्यनपर         | ५४      | यस्य सनिधिमात्रेण      | २६      |
| यतिरसदनुसर्धि          | ६७      | यस्य स्थिता भवेत्      | ८६      |
| यत्कटाक्षशशि           | ९५      | यावत्स्यात्स्वस्य      | ९०      |
| यत्कृत स्वप्नवेलाया    | ८९      | यावद्भ्रान्तिस्तावदेव  | ४०      |

|                         | पृष्ठम् |                        | पृष्ठम् |
|-------------------------|---------|------------------------|---------|
| यावद्वा यत्किञ्चिद्विष  | ६१      | वागादिपञ्च श्रवणादि    | १९      |
| येन विश्वमिद व्याप्त    | २६      | वाग्वैखरी शब्दक्षरी    | १२      |
| योगस्य प्रथम द्वार      | ७५      | वाच नियच्छात्मनि       | ७५      |
| योऽय विज्ञानमय          | ३९      | वाचा वक्तुमशक्यमेव     | ९४      |
| योऽवमात्मा स्वय         | ४३      | वायुनानीयते मेघ        | ३५      |
| यो वा पुरैषोऽहमिति      | ६०      | वासनानुदयो भोग्ये      | ८५      |
| यो विजानाति सकल         | २५      | वासनावृद्धित कार्ये    | ६३      |
| र                       |         | विकारिणा सर्व          | ५९      |
| रवेर्यथा कर्मणि सा०     | ९८      | विक्षेपशक्तिविजयो      | ६९      |
| ल                       |         | विक्षेपशक्ती रजस       | २२      |
| लक्ष्यच्युत चेद्यदि     | ६५      | विज्ञात आत्मनो         | ८७      |
| लक्ष्यालक्ष्यगतिं       | १०६     | विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य | ८८      |
| लक्ष्ये ब्रह्मणि मानस   | ७७      | विद्याफल स्यादसतो      | ८५      |
| लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म  | ३       | विद्वान्स तस्मा उप०    | ९       |
| लीनधीरपि जागर्ति        | ८९      | विनिवृत्तिर्भवेत्तस्य  | ४१      |
| लोकवासनया जन्तो         | ५५      | विमानमालम्ब्य          | १०४     |
| लोकानुवर्तन त्यक्त्वा   | ५५      | विलक्षण यथा ध्वान्त    | १०८     |
| व                       |         | विवेकवैराग्यगुणा०      | ३६      |
| वक्तव्य किमु विद्यते    | ८०      | विवेकिनो विरक्तस्य     | ५       |
| वर्तमानेऽपि देहेऽस्मिन् | ८६      | विशुद्धमन्त करण        | ७८      |
| वस्तुस्वरूप स्फुट       | १०      | विशुद्धसत्त्वस्य गुणा  | २४      |

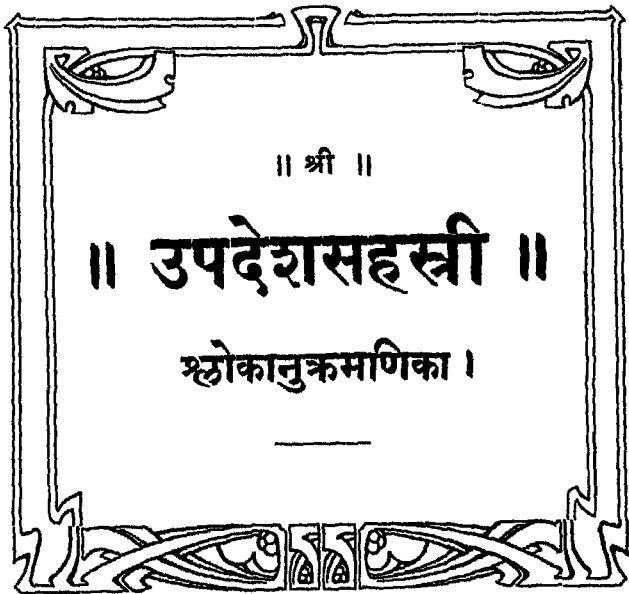


|                             | पृष्ठम् |                                | पृष्ठम् |
|-----------------------------|---------|--------------------------------|---------|
| विशोक आनन्दघनो              | ४५      | शल्यराशिर्मासलितो              | ३२      |
| विषमविषयमार्गे              | १६      | शवाकार यावद्भजति               | ८०      |
| विषयाख्यग्रहो येन           | १६      | शान्तससारकलन                   | ८६      |
| विषयाणामानुकूल्ये           | २१      | शान्ता महातो                   | ८       |
| विषयाभिमुख दृष्ट्वा         | ६५      | शान्तो दान्त पर०               | ७२      |
| विषयाशामहा०                 | १६      | शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य        | ६       |
| विषयेष्वाविशच्चेत           | ६५      | शुद्धाद्वयब्रह्म               | २२      |
| वीणाया रूपसौन्दर्य          | १२      | शृणुष्वाग्रहितो                | १४      |
| वेदशास्त्रपुराणानि          | १०३     | शैलूषो वेषसद्भावा०             | १०६     |
| वेदान्तसिद्धान्त            | ९३      | श्रद्धाभक्तिध्यान              | १०      |
| वेदा तार्थविचारेण           | १०      | श्रुतिप्रमाणैकमते              | ३०      |
| वैराग्य च मुमुक्षुत्व       | ७       | श्रुतिस्मृतिन्याय              | ६६      |
| वैराग्यबोधौ पुरुषस्य        | ७६      | श्रुते शतगुण विद्या            | ७४      |
| वैराग्यस्य फल बोध           | ८५      | श्रुत्या युक्त्या स्वानुभूत्या | ५७      |
| वैराग्यान्न पर सुखस्य       | ७६      | ष                              |         |
| व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्त | ८९      | षड्भिरूर्मिभिरयोगि             | ५२      |
| श                           |         | स                              |         |
| शब्दजाल महारण्य             | १३      | सन्यस्य सर्वकर्माणि            | ४       |
| शब्दादिभि पञ्चभिरेव         | १५      | सलक्ष्य चिन्मात्रतया           | ५१      |
| शमादिषट्क                   | ६       | ससारकारागृहमोक्ष               | ५६      |
| शरीरपोषणार्थी               | १७      | ससारब धविच्छिद्यै              | ६३      |

|                         | पृष्ठम् |                       | पृष्ठम् |
|-------------------------|---------|-----------------------|---------|
| ससाराध्वनि ताप          | १११     | सन्त्यन्धे प्रतिबन्धा | ६०      |
| ससिद्धस्य फल            | ८४      | सन्नायसन्नायु०        | २१      |
| सकलनिगमचूडा             | ११०     | समाधिनानेन            | ७४      |
| सततविमलबोधानन्द         | ८४      | समाधिना साधु          | ९२      |
| सति सक्तो नरो           | ७३      | समाहितान्त करण        | ८३      |
| सत्त्व विशुद्ध जल       | २३      | समाहिताया सति         | ८१      |
| सत्य ज्ञानमनत           | ४५      | समाहिता ये प्रवि०     | ७२      |
| सत्य यदि स्याज्जग०      | ४७      | समूलकृत्तोऽपि         | ६२      |
| सत्यमुक्त त्वया विद्वन् | ४३      | समूलमेतत्परिदह्य      | ८८      |
| सत्याभिसधानरतो          | ६७      | सम्यक्पृष्ट त्वया     | ४०      |
| सत्समृद्ध स्वत सिद्ध    | ९२      | सम्यगास्थापन          | ७       |
| सदात्मनि ब्रह्मणि       | १०७     | सम्यग्विचारत          | ५       |
| सदात्मैकत्वविज्ञान      | १०८     | सम्यग्विवेक स्फुट     | ७०      |
| सदिद परमाद्वैत          | ४६      | सर्वत्र सर्वत सर्व    | ६४      |
| स देवदत्तोऽयमितीह       | ५०      | सर्वप्रकारप्रमिति     | २४      |
| सदेवेद सर्व जग०         | ७९      | सर्ववेदात             | ३       |
| सदैकरूपस्य चिदा०        | ६२      | सर्वव्यापृत्तिकरण     | २०      |
| सद्धन चिद्धन नित्य      | ९१      | सर्वात्मकोऽह सर्वोऽह  | १००     |
| सद्ब्रह्मकार्य सकल      | ४६      | सर्वात्मना दृश्यमिद   | ५९      |
| सद्वासनास्फूर्तिवि०     | ६४      | सर्वात्मना बन्ध       | ६८      |
| सन्तु विकारा प्रकृते    | ९९      | सर्वाधार सर्ववस्तु    | ९९      |

|                         | पृष्ठम् |                              | पृष्ठम् |
|-------------------------|---------|------------------------------|---------|
| सर्वे येनानुभूयन्ते     | ४३      | स्वप्नो भवत्यस्य             | १९      |
| सर्वेषु भूतेष्वहमेव     | ९६      | स्वप्रकाशमधिष्ठान            | ५८      |
| सर्वापाधिविनिर्मुक्त    | ८३      | स्वमसङ्गमुदासीन              | ८९      |
| सर्वोऽपि बाह्य ससार     | १८      | स्वमेव सर्वत पश्यन्          | १०२     |
| सहन सर्वदु खाना         | ६       | स्वय परिच्छेदमुपेत्य         | ३९      |
| साधनान्यत्र चत्वारि     | ५       | स्वय ब्रह्मा स्वय विष्णु     | ७९      |
| साधुभि पूज्यमानेऽस्मिन् | ८८      | स्वलक्ष्ये नियता             | ६       |
| सार्वात्म्यसिद्धये      | ६९      | स्वस्य द्रष्टुर्निर्गुणस्या० | ४०      |
| सुखाद्यनुभवा यावत्      | ८८      | स्वस्याविद्याबन्ध            | ९३      |
| सुषुप्तिकाले मनसि       | ३५      | स्वात्मतत्त्वानुसधान         | ७       |
| सोऽय नित्यानित्य        | ६       | स्वात्मन्यारोपिताशेष         | ८१      |
| स्थितप्रज्ञो यतिरय      | ८६      | स्वात्मन्येव सदा स्थित्या    | ५७      |
| स्थूलस्य सभवजरा         | १८      | स्वानुभूत्या स्वय            | ९३      |
| स्थूलादिभावा मयि        | ९६      | स्वामिन्नमस्ते               | ८       |
| स्थूलादिसबन्धवतो        | १०५     | स्वाराज्यसाम्राज्य           | १००     |
| ज्ञातसा नीयते दारु      | १०६     | ह                            |         |
| स्व बोधमात्र परिशुद्ध   | ५४      | हितमिदमुपदेशम्               | ११०     |
| स्वप्नेऽर्थशूये सृजति   | ३५      | ---                          |         |





॥ श्री ॥

॥ उपदेशसहस्री ॥

श्लोकानुक्रमणिका ।

---

॥ श्री ॥

## ॥ श्लोकानुक्रमणिका ॥

—\*—

|                          | पृष्ठम् |                         | पृष्ठम् |
|--------------------------|---------|-------------------------|---------|
| अ                        |         | अज्ञासिषमिद मा          | २२७     |
| अकल्पितेऽप्येवमजे        | २४४     | अतोऽन्यथा न ग्रह०       | २४६     |
| अकार्यशेषमात्मानम्       | १७८     | अत्यरेचयदित्युक्तौ      | १५५     |
| अकालत्राददेशत्वात्       | १८०     | अथाभ्युपेत्यापि         | २४५     |
| अकुर्वदिष्ट यदि          | २४४     | अदृशिर्दृशिरूपेण        | २२१     |
| अकुर्वन्सर्गकृच्छुद्ध    | २०९     | अदृश्योऽपि यथा राहु     | २०४     |
| अक्रियत्नेऽपि तादात्म्य  | २२१     | अदृष्ट द्रष्टविज्ञात    | १८७     |
| अगोरसत्त्वं गोत्व ते     | २२९     | अद्रष्टुर्नैव चान्धस्य  | २२९     |
| अचक्षुष्कादिशास्त्राच्च  | १७३     | अध्यक्ष स्यमस्त्येव     | २२७     |
| अचक्षुष्कादिशास्त्रोक्त  | १७३     | अध्यक्षस्य ऋशो ऋदृक्    | २३०     |
| अचक्षुष्पूज्य दृष्टिर्मे | १७०     | अध्यक्षस्य प्रथक्सिद्धौ | २२६     |
| अजोऽमरश्चैव तथा          | १५४     | अध्यक्षस्य समीपे तु     | २२०     |
| अजोऽह चामरो              | २०७     | अध्यक्षस्य समीपे स्यात् | २२५     |
| अज्ञान कल्पनामूल         | १९२     | अध्यक्षस्यापि सिद्धि    | २२८     |
| अज्ञान तस्य मूल          | १५४     | अध्यक्षेण कृता दृष्टि   | २३०     |

|                        | पृष्ठम् |                            | पृष्ठम् |
|------------------------|---------|----------------------------|---------|
| अध्यक्षोऽहमिति ज्ञान   | २३१     | अप्राणस्य न कर्मास्ति      | १७२     |
| अनवस्थातरत्वाच्च       | १९७     | अप्राणस्यामनस्कस्य         | १७९     |
| अनादितो निर्गुणतो      | १६५     | अप्राणैव निवर्तन्ते        | १८६     |
| अनित्या साविशुद्धेति   | १७३     | अबद्धचक्षुषो नास्ति        | २०३     |
| अनुभूते किमन्यस्मिन्   | २२९     | अभावरूप त्वमसीह            | २४२     |
| अनेकजन्मातर            | १९९     | अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्मा | २२९     |
| अयञ्चेत्सदहग्राहि      | २२४     | अभियुक्तप्रसिद्धिश्चेत्    | २१९     |
| अन्यदृष्टि शरीरस्थ     | २०७     | अमनस्कस्य का चिन्ता        | १८०     |
| अन्यदृष्टिस्त्वविद्या  | २००     | अमनस्कस्य शुद्धस्य         | १७३     |
| अन्योऽयापेक्षया तेषा   | २२३     | अमूर्तमूर्तानि च           | १८२     |
| अन्वयव्यतिरेकाभ्या     | २३३     | अमृत चाभय नार्त            | १६९     |
| अन्वयव्यतिरेकाभ्या     | २३५     | अमृतत्व श्रुत तस्मात्      | १५६     |
| अन्वयव्यतिरेकोक्ति     | २३३     | अर्थी दुःखी च य            | २२१     |
| अन्वयव्यतिरेकोक्तिस्त० | २३४     | अलुप्ता त्वात्मनो दृष्टि   | १७१     |
| अन्वयव्यतिरेकौ हि      | २२३     | अवगत्या हि सव्याप्त        | २२६     |
| अन्वयी ग्राहकस्तेषा    | २२०     | अवस्थान्तरमग्रेव           | १९७     |
| अपायोद्भूतिहीनाभि      | २०६     | अविकल्प तदस्त्येव          | १९२     |
| अपि निन्दोपपत्तेश्च    | १९८     | अविद्यया भावनया            | १६५     |
| अपेक्षा यदि भिन्नेऽपि  | १९३     | अविद्याप्रभव सर्वे         | २०२     |
| अपोहो यदि भिन्नाना     | २३०     | अविद्याबद्धचक्षुष्वात्     | २३३     |
| अप्रकाशो यथादित्ये     | १९४     | अविद्यामाल एवात            | २१७     |

|                       | पृष्ठम् |                           | पृष्ठम् |
|-----------------------|---------|---------------------------|---------|
| अविविच्योभय वक्ति     | २७१     | अहधीरिदमात्मोत्था         | १५७     |
| अविवेकात्पराभाव       | १६१     | अह निर्मुक्त इत्येव       | २३८     |
| अवेद्यमेक यदन य       | २४६     | अह पर ब्रह्म              | १६६     |
| अशानायादिनिर्मुक्त    | २३६     | अह प्रत्ययबीज यत्         | १५८     |
| अशानायादिनिर्मुक्त्यै | २२४     | अह ब्रह्मास्मि कर्ता च    | १६८     |
| अशानायाद्यतिक्रान्त   | १७६     | अह ब्रह्मास्मि सर्वोऽस्मि | १७४     |
| अशब्दादित्वतो नास्य   | २०४     | अह ममेति त्वमनर्थ         | २४०     |
| असत्सम चैव            | २४३     | अह ममेत्येषण              | १८०     |
| असदेतत्ततो युक्त      | २ १     | अह ममैको न                | १६२     |
| असदेतन्नय यस्मात्     | २०१     | अहशब्दस्य या निष्ठा       | २२४     |
| असद्वय तेऽपि हि       | २४३     | अहमज्ञासिष चेद            | २२७     |
| असमार्धि न पश्यामि    | १७९     | अहमित्यात्मधीर्या च       | १७९     |
| असिद्धितश्चापि        | २४४     | अहमेव च भूतेषु            | २०८     |
| अस्ति तावत्स्वय नाम   | १९३     | अहमेव सदात्मज्ञ           | २०९     |
| अस्पर्शत्वाददेहत्वात् | २३१     | आ                         |         |
| अस्पर्शत्वात्त्र मे   | १७२     | आत्मज्ञस्यापि यस्य        | १७७     |
| अस्पर्शोऽपि यथा       | २३२     | आत्मनीह यथाध्यास          | २१४     |
| अह कर्ता ममेद         | १५५     | आत्मनो ग्रहणे चापि        | २२७     |
| अहकर्तैव ससारी        | २१५     | आत्मनोऽन्यस्य चेत्        | १५७     |
| अहकर्त्रात्मनि न्यस्त | २१४     | आत्मप्रत्यायिका ह्येषा    | २१०     |
| अहक्रियाद्या हि       | १८१     | आत्मबुद्धिमन०             | १८७     |

|                         | पृष्ठम् |                          | पृष्ठम् |
|-------------------------|---------|--------------------------|---------|
| आत्मबुद्धिमनश्चक्षु०    | १९२     | आभासस्तदभावश्च           | २२२     |
| आत्मरूपविधे             | २०६     | आभासान्मुखमायेव          | २१५     |
| आत्मलाभ परो लाभ         | १०५     | आभासो यत्र तलैत्र        | २११     |
| आत्मलाभात्परो           | २००     | आरब्धस्य फले ह्येते      | १५८     |
| आत्माग्नेरि धना         | १८५     | आलोकस्थो घटो             | २३०     |
| आत्मा ज्ञेय परो         | २००     | इ                        |         |
| आत्मान सर्वभूतस्थ       | १७९     | इतरेतरहेतुत्वे           | १९५     |
| आत्माभासस्तु            | २१८     | इति प्रणुन्ना द्वयवादि   | १९८     |
| आत्माभासापरिज्ञानात्    | २१७     | इति प्रश्नानुरूप यत्     | २३८     |
| आत्माभासाश्रयश्च        | २१७     | इतीदमुक्त परमार्थ        | १६७     |
| आत्माभासाभयाश्चैत्र     | २१६     | इतोऽयोऽनुभव कश्चित्      | २३८     |
| आत्मार्थत्वाच्च सर्वस्य | १९५     | इत्येतद्यावदज्ञान        | १७३     |
| आत्मार्थोऽपि हि यो      | २००     | इत्येव प्रतिपत्ति स्यात् | २२५     |
| आत्मा ह्यात्मीय इत्येष  | १७७     | इत्येव सर्वदात्मान       | १७५     |
| आत्मैक सर्वभूतेषु       | १८४     | इत्येव सौगता आहु         | २१६     |
| आदर्शमुत्सामान्य        | २१९     | इद तु सत्य मम            | १६५     |
| आदर्शस्तु यदाभासो       | २२५     | इद पूर्वमिद पश्चात्      | २३३     |
| आदर्शानुविधायित्वा      | २२०     | इद रहस्य परम             | १९८     |
| आधारस्यायसत्त्वाच्च     | १९३     | इद वनमतिक्रम्य           | १५७     |
| आधिभेदाद्यथा भेदो       | २२६     | इदमग्नोऽहमित्यत्र        | १६०     |
| आपोषात्प्रतिबुद्धस्य    | १६८     | इहैव घटते प्रश्नो        | २३८     |



|                           | पृष्ठम् |                              | पृष्ठम् |
|---------------------------|---------|------------------------------|---------|
| ई                         |         | कर्त्रा चेदहमित्येव          | २३१     |
| इक्षितृत्व स्वत सिद्ध     | १५७     | कर्मकार्यस्त्वनित्य          | २०१     |
| इश्वरत्वेन किं तस्य       | १७८     | कर्मस्वात्मा स्वतन्त्रश्चेत् | १८३     |
| ईश्वरश्चेदनात्मा स्यात्   | ११७     | कर्माणि देहयोगार्थं          | १९३     |
| उ                         |         | कर्मेप्सिततमत्वात्स          | २५६     |
| उत्पाद्यायविकार्याणि      | २०६     | कल्प्योपाधिभिरेवैतत्         | २०२     |
| उपलब्धि स्यज्योति         | २१४     | कारकाण्युपमृद्नाति           | १५५     |
| उत्सुकादौ यथाग्यर्था      | २१५     | किं सदेवाहमस्मीति            | २५४     |
| ए                         |         | किमन्यद्ब्राह्मयेत्कश्चित्   | २२७     |
| एतावद्धर्ममृतत्व न        | १५७     | कुण्डल्यहमिति ह्येतत्        | २३२     |
| एतेनैवात्मनात्मनो         | १९१     | कूटस्थेऽपि फल                | २२५     |
| एत तत्त्वमसीत्यस्य        | २३८     | कृतकृत्यश्च सिद्धश्च         | १७७     |
| एत विजातवाक्यार्थे        | २२३     | कृपणास्तेऽयथैवातो            | २००     |
| एव शास्त्रानुमानाभ्या     | १७१     | कृष्णलादौ प्रमाज म           | २३५     |
| क                         |         | कृष्णायो लोहिताभासम्         | २२२     |
| करण कर्म कर्ता च          | १७५     | कृष्यादिवत्फलार्थत्वात्      | १५५     |
| कर्ता तु ख्यहमस्मीति      | २३७     | केपला मनसो वृत्ति            | २४      |
| कर्ताध्यक्ष सदस्मीति      | २२१     | कोशादिव विनिष्कृष्ट          | १६८     |
| कर्ता भोक्तेति यच्छास्त्र | २१२     | क्रियोत्पत्तौ विनाशित्व      | १९६     |
| कर्तृकर्मफलाभावात्        | १७७     | क्षणिक हि तदत्यर्थ           | १९२     |
| कर्तृत्व कारकापेक्ष       | १७१     | क्षीरात्सर्पिर्बोधकृत्य      | २०७     |

|                           | पृष्ठम् |                               | पृष्ठम् |
|---------------------------|---------|-------------------------------|---------|
| क्षुधया पीड्यमानोऽपि      | २४०     | चैतन्याभासता बुद्धे           | २१७     |
| ग                         |         | छ                             |         |
| गतव्य च तथा               | १७९     | छायाक्रातेर्निषेधोऽय          | २१६     |
| गुणाना समभावस्य           | १९७     | छित्त्वा त्यक्तेन हस्तेन      | १५९     |
| घ                         |         | ज                             |         |
| घटादिरूप यदि              | १८१     | जनिमज्ज्ञानविशेष              | १६३     |
| घ्राणादीनि तदर्थाश्च      | १९०     | जन्ममृत्युप्रवाहेषु           | १८९     |
| च                         |         | जाग्रतश्च तथा भेदो            | २०२     |
| चक्षुर्युक्ता धियो वृत्ति | २०४     | जाग्रत्स्वप्नौ तयोर्बीज       | १९२     |
| चक्षुर्वत्कर्मकर्तृत्व    | १९१     | जातिकर्मादिमत्त्वाद्धि        | २१५     |
| चित्ति स्वरूप स्वत        | १६१     | जात्यादीन्सपरित्यज्य          | १८४     |
| चित्त चेतनमित्येतत्       | २२२     | जिघत्सा वा पिपासा वा          | १७२     |
| चित्ते ह्यादर्शवद्यस्मात् | २०२     | जावश्चेत्परमात्मान            | २०९     |
| चिन्मान्त्रज्योतिषा सर्वा | १७६     | ज्ञातता स्वात्मलाभो वा        | २२८     |
| चिन्मान्त्रज्योतिषो नित्य | १८०     | ज्ञातायत्नोऽपि तद्ब्रज्ज      | १८९     |
| चेतनस्त्व कथ देह          | २२७     | ज्ञातुर्ज्ञातिर्हि नित्योक्ता | १६३     |
| चेतनोऽचेतनो वापि          | १८६     | ज्ञातुर्ज्ञेय परो             | १७७     |
| चेष्टित च यतो मिथ्या      | २१३     | ज्ञातैवात्मा सदा ग्राह्यो     | १६०     |
| चैतन्य सर्वग सर्व         | १५३     | ज्ञातैवाहमविशेष               | १७१     |
| चैत यप्रतिबिम्बेन         | १७९     | ज्ञान ज्ञेय तथा ज्ञाता        | २११     |
| चैतन्यभास्यताहम           | १५९     | ज्ञानज्ञेयादिवादेऽत           | २२८     |

|                           | पृष्ठम् |                            | पृष्ठम् |
|---------------------------|---------|----------------------------|---------|
| ज्ञानप्रत्नायनेरुत्       | १०८     | तस्मादज्ञानज्ञानाय         | १०८     |
| ज्ञानेनैव विगोच्यत्यात्   | १०८     | तस्मादनुभवायेव             | २१३     |
| ज्ञानैकार्थपरत्वात्       | २०१     | तस्मादात्मविमुक्तत्वात्    | २३८     |
| योतिषो योतकृत्वेऽपि       | १०१     | तस्मादायतम येसु            | २३६     |
| त                         |         | तस्माद्भातिरतोऽन्याद्बहि   | १९८     |
| त च मूढ च यद्यन्य         | १७०     | तस्माद्वाक्यार्थविज्ञानात् | २३९     |
| तत्त्वमस्यादिप्राक्येषु   | २३३     | तस्मान्नील त वा पीत        | २३०     |
| तत्त्वमोस्तुन्यनीडाद्य    | २३५     | तस्य प्राज्ञत्वमिष्ट चेत्  | २२८     |
| तत्रैव सभवत्यथ            | २३४     | तापा तत्त्वादनिव्यत्यात्   | २०६     |
| तत्रैव सति बुद्धीर्ज      | १८०     | तु यकालसमुद्भूतौ           | १९३     |
| तथा पुत्रपत्न्या विद्या   | १०८     | त्पुरु त्प तदेवेति         | १६९     |
| तथा येन्द्रिययुक्ता       | १७५     | त्पदायविशेषाय              | २३८     |
| त ग्रन्थेषा च भिन्नत्वात् | १०८     | त्पसतोऽस्तुन्यनीडत्वात्    | २३२     |
| तथाप्रक्रियरूपत्वात्      | १०४     | त्पर्य प्रत्यगात्मान       | २०९     |
| तथैव चेतनाभास             | २०२     | त्पयि प्रशान्ते न हि       | २४१     |
| तदायस्तिप्रति चेत्तन्न    | २०२     | द                          |         |
| तदा नु दृश्यते तु स       | २३२     | दक्षिणाश्विप्रधानेषु       | १८१     |
| तदत्रैक विधा ज्ञेय        | २०३     | दग्धैरमुष्ण सत्ताया        | १८८     |
| तद्विज्ञानाय युक्त्यादि   | २३७     | ददतश्चात्मनो ज्ञान         | २११     |
| तस्माज्जाभासबुद्धीना      | २२०     | दशमस्त्रमसीत्येव           | २३३     |
| तस्मात्त्यक्तेन हस्तेन    | १५९     | दशमस्य नरात्मत्व           | १६९     |

|                              | पृष्ठम् |                          | पृष्ठम् |
|------------------------------|---------|--------------------------|---------|
| दशाहाशोचक्रायाणां            | ५०७     | देहात्मबुद्धयेऽन्तात्    | १७१     |
| दादच्छेदप्रिनाशेषु           | ५३१     | दहादाप्रभिमानीत्यो       | २३१     |
| दु सित्वात्प्रत्यगात्मत्वं   | २३१     | देहान्तरम्भसामर्थ्यात्   | १७८     |
| दु स्त्री स्याद्दु रयहमानात् | १९१     | देहाद्यैरविशेषेण         | १७१     |
| दु रयस्मीति सति ज्ञाने       | २३८     | देहाभिमानीनो दु रय       | १७      |
| दृग्निरूपे सदा नित्ये        | १७०     | देहेऽहप्रत्यया           | २१०     |
| दृशिरेवानुभूयेत              | २३६     | द्रष्टा च दृश्य च        | २४५     |
| दृशिस्तु शुद्धोऽहम्          | १६४     | द्रष्टृश्चायद्भवेद्दृश्य | १८३     |
| दृशिम्वरूप गगनोपम            | १६४     | द्रष्ट श्रोतृ तथा मन्तु  | १७७     |
| दृशिस्वरूपेण हि              | १८१     | द्वयोरेयेति चेत्तन्न     | २१०     |
| दृशेश्चक्राया यदारूढा        | १७०     | ध                        |         |
| दृश्यात्पादहमित्येष          | १८१     | धर्माधर्मफलैर्योग        | १६८     |
| दृष्ट चापि यथा रूप           | ५०१     | यमाधर्मविनिर्मुक्त       | २०९     |
| दृष्ट जागरित विद्यात्        | ५०३     | वर्माधर्मौ ततोऽज्ञस्य    | ११३     |
| दृष्ट हित्वा स्मृति तस्मिन्  | १८७     | धीरेवार्थम्वरूपा हि      | १७६     |
| दृष्टमचेत्प्ररोह स्यात्      | १८८     | ध्यायतीत्यविकारित्व      | २०४     |
| दृष्टि श्रुतिर्मतिर्जाति     | १७८     | ध्रुवा ह्यनित्याश्च न    | २४७     |
| दृष्टि स्पष्टि श्रुतिर्घाति  | २००     | न                        |         |
| दृष्ट्या बाह्य निमील्याथ     | ५०७     | न कश्चिच्चेष्यते धर्म    | २२०     |
| देहलिङ्गात्मना कार्या        | १६९     | न चास्ति शब्दादि         | १८०     |
| देहात्मज्ञानवज्ज्ञान         | १८८     | न चेत्स इष्ट सद          | २४७     |

|                            | पृष्ठम् |                            | पृष्ठम् |
|----------------------------|---------|----------------------------|---------|
| न चन्द्रय प्रसूयत          | १ १     | न म्रय म्रस्य ना यस्य      | २१      |
| न तनाऽमृततागास्ति          | १६९     | न न्स्ती न तदारूढो         | २०३     |
| न तस्येगान्यतोऽपक्षा       | १८८     | न हि दीपान्तरापेक्षा       | २०५     |
| न दगोरप्रिफारित्वात्       | २१७     | न हि सिद्धस्य कृतय         | २३७     |
| न दष्टिऽयते द्रष्टु        | १८१     | न हीह लाभो                 | १०९     |
| ननु कर्म तथा नित्य         | १७४     | न ह्यजात्यादिमान्          | २१७     |
| ननु पुत्रफला मित्रा        | १ ४     | नात्माभासत्प्रसिद्धिश्चेत् | २२१     |
| नत्वेव दृष्टिसक्राति       | २२२     | नाद्राक्षमहमित्यस्मिन्     | २२३     |
| न प्रकाश्य यथोष्णत्व       | १९६     | नानयोद्गर्शयत्व तु         | २१८     |
| न प्रियाप्रिय इत्युक्ते    | १८३     | ना यदयद्भवेद्यस्मात्       | १८२     |
| न बाह्य म यतो वा           | २०८     | ना येन ज्योतिषा काय        | १८८     |
| न बुद्धरवगोधोऽस्ति         | २१८     | नायतो भावशब्देन            | २१८     |
| न बुद्धेर्बुद्धिगान्यत्प्र | २१८     | नामरूपक्रियाभ्योऽयो        | १६८     |
| न भृतस्तर्हि नागित्व       | २२०     | नामादिभ्य परे भूम्नि       | २०८     |
| न मेऽस्ति ऋश्चन्न च        | २४२     | नाहोरात्रे यथा सूर्ये      | १८९     |
| न मऽस्ति मोहस्तव           | २४१     | नित्यमुक्त सदेवास्मि       | २११     |
| न म हेय न चाहेय            | १७४     | नित्यमुक्तत्वविज्ञान       | २३७     |
| न यषामेक एवात्मा           | २१८     | नित्यमुक्तस्य शुद्धस्य     | १७२     |
| नवबुद्धयपहाराद्धि          | २३३     | निमीलोन्मालने स्थाने       | १९२     |
| न सच्चाह न चासच्च          | १७४     | नियोगोऽप्रतिपन्नत्वात्     | २१२     |
| न स्मरत्यात्मनो ह्यात्मा   | १७७     | निर्गुण निष्क्रिय नित्य    | २१०     |

|                              | पृष्ठम् |                          | पृष्ठम् |
|------------------------------|---------|--------------------------|---------|
| निर्दुं योऽतीतदेहेषु         | ४१०     | पूर्वाक्त यत्तमोऽजीज     | २७      |
| निर्दुं यो निग्नयोऽकाम       | ४३७     | प्रप्रमाणावभित्ताच्य     | ४०८     |
| निवृत्ता सा कथं भूय          | १५७     | प्रफाणस्य यथा देह        | १६०     |
| निश्चयार्था भवेद्बुद्धि      | १९०     | प्रकृतिप्रत्यया गौ यौ    | २१७     |
| नेति नेतीति देहादीन्         | १५७     | प्रजाप्राणानुकार्यात्मा  | १७०     |
| नेति नेत्यादिनास्त्रेभ्य     | २०८     | प्रतिबन्धविहीनत्वात्     | २२४     |
| नैककारकसा यत्वात्            | १६६     | प्रतिलोमसिद्ध सर्ग       | ४२३     |
| नेतदेव रहस्याना              | २१३     | प्रतिपिद्वेदमशा ज        | १७०     |
| नैतद्देयमशा ताथ              | २१०     | प्रतिपेक्षुमशक्यत्वात्   | १७०     |
| नैव स्वप्ने पृथक्सिद्धे      | ४२६     | प्रत्यक्षमनुमान वा       | २३०     |
| नौस्थस्य प्रातिलोम्येन       | १६९     | प्रत्यक्षादीनि बाधेरन्   | २५४     |
| प                            |         | प्रत्यगात्मन जात्मत्व    | २५४     |
| पदत्रायप्रमाणज्ञै            | ४००     | प्रत्यगात्माभिधानेन      | ४२      |
| परलोकभय यस्य                 | १७८     | प्रत्ययान्प्रयिनिष्ठत्वं | २२१     |
| परस्य देहे न                 | १०९     | प्रत्ययी प्रत्ययश्चैव    | २२४     |
| पारगस्तु यथा नत्रा           | १७७     | प्रत्ययायस्तु तस्यैव     | १५०     |
| पार्थिवं कठिनो               | १९०     | प्रथमं ग्रहणं सिद्धि     | ४२६     |
| पुत्रदुःखं यथा यस्त          | २१४     | प्रधानस्य च पारार्थ्ये   | १५६     |
| पूर्वं स्यात्प्रत्ययव्याप्ति | २३१     | प्रबोधरूपं मनसो          | १८२     |
| पूर्वदेहपरित्यागे            | ४०५     | प्रबोधेन यथा स्वप्न      | २५१     |
| पूर्वबुद्धिमबाधित्वा         | १५७     | प्रमथ्य वज्रोपम          | २११     |

|                              | पृष्ठम् |                           | पृष्ठम् |
|------------------------------|---------|---------------------------|---------|
| प्रयुज्य त्रिणापर            | २४०     | बुद्धौ चेत्तत्कृत ऋश्चित् | २२७     |
| प्रगा तच्चित्ताय             | १९९     | बुद्धौ दृश्य भवेद्बुद्धौ  | १६१     |
| प्रसन्ने त्रिमले व्योम्नि    | १७९     | बुद्धयर्गायादुरेतानि      | १९०     |
| प्रसिद्धिर्मूलोऽस्य          | २१९     | बुद्ध्यादीनामनात्मत्व     | १७६     |
| प्रागेतद्विधे ऋर्म           | २०१     | बुद्ध्यादौ सत्युपाधौ      | १७९     |
| प्राणान्तेन त्रिभु           | २०७     | बुद्ध्यारूढ सदा सव        | १६      |
| प्राप्तश्चेत्प्रतिषि येत     | २१४     | बुद्ध्यारूढ सदा सर्वे     | २२२     |
| प्रामाण्येऽपि स्मृत          | २२७     | बुभुत्सोर्यदि चायत्र      | १७७     |
| फ                            |         | बोधस्यात्मस्वरूपत्वात्    | १९७     |
| फला त चानुभूत यत्            | १८३     | बोधात्मज्योतिषा दीप्ता    | १९७     |
| फले च हेतौ च                 | १६२     | बौद्धैस्तु प्रत्ययैरेव    | २२०     |
| ब                            |         | ब्रह्मा दाशर्यैर्द्वत्    | २२४     |
| ब ध मोक्ष च सर्ग             | २१०     | ब्रह्माद्या स्थावराता ये  | १६३     |
| बा यते प्रत्ययेनेह           | २३१     | ब्रह्मास्मीति च त्रिधेय   | २३९     |
| बाह्याकारत्वतो               | १९३     | भ                         |         |
| बिलात्सर्पस्य निर्याणे       | १८८     | भवाभवत्व तु न             | २४४     |
| बीज चैक यथा भिन्न            | २०३     | भागोर्विम्ब यथा चौष्ण्य   | २०४     |
| बुद्धिस्थश्चलतीवात्मा        | १७९     | भारूपत्वाद्यथा            | २०८     |
| बुद्धीना विषयो दु स          | २३६     | भिक्षामट यथा स्वप्ने      | १७५     |
| बुद्धे कर्तृत्वम यस्य        | २१९     | भिद्यते हृदयग्रन्थि       | १८९     |
| बुद्धेस्तु प्रत्ययास्तस्मात् | २२०     | भूतदोषै सदास्पृष्ट        | १६३     |

|                       | पृष्ठम् |                         | पृष्ठम् |
|-----------------------|---------|-------------------------|---------|
| भूतियाया क्रिया सैव   | २२९     | मायाहस्तिनमारह्य        | २०३     |
| भेदाभावेऽयभासस्य      | २२९     | मिथश्च भिन्ना यदि       | २४२     |
| भेदोऽभेदस्तथा चैको    | १७८     | मित्या यासनिपेधाथ       | १२७     |
| म                     |         | मुरवत्स्मृत आत्मान्यो   | २१२     |
| मच्चैतयावभास्यत्वात्  | १६३     | मुखाभासो य आदग          | २१६     |
| मणौ प्रकाश्यते यद्वत् | १६०     | मुरेन व्यपदेशात्स       | २१६     |
| मद् य सर्वभूतेषु      | १७४     | मूत्या मूढ इत्येव       | १७३     |
| मनसश्चेन्द्रियाणा च   | २०३     | मूत्रागङ्को यथोदङ्को    | १५८     |
| मनोबुद्धीन्द्रियाणा च | १८६     | मूषासिक्त यथा ताम्र     | १७७     |
| मनोवृत्त मनश्चैव      | १६७     | मृषाध्यासस्तु यत्र      | १९३     |
| ममात्मास्य त आत्मेति  | १७४     | मोक्षस्तन्नाग एत्र      | १९७     |
| ममाहकारयत्नेच्छा      | १७८     | मोक्षोऽवस्थान्तर यस्य   | १९४     |
| ममाह चेत्यतोऽविद्या   | २०५     | य                       |         |
| ममाहमित्येतत्         | १८९     | य आत्मा नेति नेतीति     | १७६     |
| ममेद द्वयमप्येतत्     | २२३     | यतश्च नित्योऽहमतो       | २४१     |
| ममेदप्रत्ययो ज्ञेयौ   | २२२     | यतो न चाय पर०           | २४०     |
| ममेदमित्य च तथे०      | १६६     | यतोऽभूत्वा मयेद्यच्च    | १८८     |
| महाराजादयो लोका       | १६८     | यत्कामस्तःक्रतुर्भूत्वा | २०६     |
| माधुर्यादि च यत्कार्य | २१६     | यत्र यस्यावभासस्तु      | २१९     |
| मानसे तु गृहे व्यक्ता | १८६     | यत्स्थस्तापो रवेर्देहे  | १७०     |
| मानस्यस्तद्वदन्यस्य   | १७२     | यथात्मबुद्धिचाराणा      | १६०     |



|                         | पृष्ठम् |                         | पृष्ठम् |
|-------------------------|---------|-------------------------|---------|
| यथानुभूयत तृप्ति        | २३६     | या माहारजनाग्रास्ता     | १६८     |
| यथान्यत्वेऽपि तादात्म्य | १७८     | यावान्स्यादिदमगो य      | १६०     |
| यथा त्रिग्या तथा        | १५४     | युगपत्समवेतत्व          | १०६     |
| यथा त्रिगुद्ध गगन       | १८२     | येन वेत्ति स वेद स्यात् | २०१     |
| यथा सर्वांतर व्योम      | १७१     | येन स्वप्नगतो वक्ति     | २०१     |
| यथा ह्य यगरीरेषु        | १८४     | येनात्मना विलीयन्ते     | २११     |
| यथेष्टान्चरणप्राप्ति    | २९      | येनाधिगम्यतेऽभाव        | १०४     |
| यथोक्त ब्रह्म यो वेद    | १८०     | यो त्रेदालसत्प्रित्त    | १७१     |
| उदद्वय ज्ञानमतीत        | १२६     | योऽहर्करारमात्मान       | १७८     |
| यदा नित्येषु वाक्येषु   | २३३     | यो हि यस्माद्विरक्त     | २३०     |
| यदाभासेन सव्याप्त       | २२६     | र                       |         |
| यदाय कल्पयेद्भेद        | २०२     | रज्जुसपा यथा रज्ज्जा    | २१७     |
| यदाहर्कतुरात्मत्व       | २१८     | रहस्य सर्ववेदाना        | २१०     |
| यदेत दृश्यते लोके       | १०९     | रागद्वेषक्षयाभावा       | १४      |
| यद्धर्मा य पदारथौ       | १०१     | राजतत्साभिमात्रत्वात्   | २१०     |
| यद्येव नायदृश्यास्ते    | २२०     | राहो प्रागेव नस्तुत्व   | २१६     |
| यद्वाक्सर्याशु          | २००     | रूपत्राद्यसत्त्वान्न    | १६३     |
| यन्मनास्तन्मयोऽन्यत्वे  | १८४     | रूपसस्कारतुल्याधी       | १८४     |
| यस्मान्दीता प्रवर्तते   | २०७     | रूपस्मृत्यन्धकारार्था   | १८७     |
| यस्मिन्देवाश्च वेदाश्च  | १८०     | रूपादीना यथान्य स्यात्  | २३०     |
| या तु स्यान्मानसी       | १७२     | व                       |         |

|                             | पष्ठम् |                            | पृष्ठम् |
|-----------------------------|--------|----------------------------|---------|
| वस्तु च्छाया स्मृतर यत्     | २१'    | वित्राज्ञानहानाय           | १५४     |
| नाक्या र्प्रत्ययी ऋश्चित्   | २१२    | विमथ्य वेदान्धित           | २४६     |
| नास्या र्गो व्यज्यते चैव    | २२४    | विमुच्य मायामय             | १६१     |
| वाभ्य तत्त्वमसीत्यास्मिन्   | २३'    | विराट्पैशानरो बाह्य        | २०८     |
| नाचारम्भणमात्रत्वात्        | २०८    | विरुद्धत्वादत तस्य         | १५१     |
| वाचारम्भणशास्त्राच्च        | १९४    | विप्रिन्यास्मात्प्रमात्मान | १८७     |
| वाच्यभेदान्तु तद्भेद        | २०१    | विप्रेनात्मविद्या तु म     | २३२     |
| वाय्वादीना यथोत्पत्ते       | १६३    | विशुद्धिश्चात एवास्य       | १९४     |
| वासुदेवो यथाश्रत्ये         | १८४    | विशपणमिद सत्र              | १' ९    |
| विकल्पना चाग्यभये           | २४३    | विशेषो मुक्त्यद्धाना       | १९७     |
| विकल्पनाच्चापि              | २४४    | विषयग्रहण यस्य             | २३१     |
| विकल्पना वापि तथा           | २४२    | विषयत्र प्रकाशित्व         | २०      |
| विकल्पोद्भवतोऽमत्र          | १९४    | विषया रासना नापि           | १८६     |
| विकारिणमशुद्धत्र            | १६०    | वेदान्तवाक्यपुण्येभ्यो     | २४      |
| विक्षेपो नाम्ति तस्मान्मे   | १७३    | वेदाया निश्चिता ह्येव      | १७७     |
| विज्ञानुनैव विज्ञाता        | १७     | व्यक्ति स्यादप्रकाशस्य     | १८८     |
| विज्ञातेर्यस्तु विज्ञाता    | १७     | व्यञ्जकत्व तदपारया         | १७६     |
| विदिताविदिताभ्या            | १८९    | व्यञ्जकस्तु यथालोको        | १९०     |
| विद्यया तारिता स्मो यै      | २११    | व्यञ्जको वा यथालोको        | १७१     |
| विद्याया प्रतिबुल हि        | १५४    | व्यवधानाद्धि पारोक्ष्य     | २०५     |
| विद्याविद्ये श्रुतिप्रोक्ते | २०२    | व्यस्त नास समस्त वा        | १८७     |

|                             | पृष्ठम् |                         | पृष्ठम् |
|-----------------------------|---------|-------------------------|---------|
| यापफ सपता याम               | १८७     | गाम्भान र्भयमेव स्यात्  | १९७     |
| यातुमिष्ट य यत्फु           | २०८     | गिराहु ग्यादिनात्मान    | १०१     |
| योमय सर्वभूतस्था            | १८      | श्र यतापि न युक्तैव     | १९१     |
| प्रणह्यागयोगभापेन           | १८८     | प्रद्वामत्ती पुरस्कृत्य | १०८     |
| <b>ञ</b>                    |         | भुतमात्रेण चन्न         | २२४     |
| नक्त्यलोपात्सुपुक्ते        | २८      | भुतानुमानजन्मानौ        | २१०     |
| शब्दादीनामभाप्रश्च          | १७३     | श्रोतु स्यात्पटेगश्चत्  | २२१     |
| शब्दाद्धानुमितेनापि         | २८      | शातश्रोत ययाभदो         | २३७     |
| शब्दानामयथार्थत्वे          | २१०     | <b>ष</b>                |         |
| शब्देनैव प्रमाणेन           | २२७     | पद्ममिमालाभ्यति         | २८१     |
| शरीरबुद्धीद्रिय             | १८      | <b>स</b>                |         |
| शरीरबुद्ध्योपदि             | १८१     | सकृत्पा ययमायो          | १०२     |
| शरीरेद्रियसघात              | १०      | सघातो वास्मि भूताना     | १८१     |
| शा त प्राज तथा              | २       | सतिधौ सर्वदा तस्य       | २१८     |
| शा तेश्चायत्नमिद्धत्वात्    | १०३     | सबन्धग्रहण शास्त्रात्   | २२१     |
| शारारादि तप युयात्          | २२      | सय धानुपपत्तेश्च        | १०२     |
| शागीरा प्रथिना तावत्        | १३      | सय धा तान्य प्प्राय     | २२१     |
| शास्त्रप्रामाण्यतो          | २१२     | सभाव्यो गोचर गद         | २१८     |
| शास्त्रयुक्तिप्ररोधात्      | १९८     | सयागस्यायनित्यत्वात्    | १०      |
| शास्त्रस्यानतिशङ्कत्वात्    | २०८     | सवादमेत यदि             | १६०     |
| शास्त्राद्गह्वास्मि ना योऽह | २३९     | ससारो वस्तुसस्तेषा      | २१७     |